शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

अक्टूबर : १९६५ ☆ वर्ष २१वाँ, आश्विन, वीर नि०सं० २४९१ ☆ अंक : ६

आध्यात्मिक पद

★

आशा औरन की क्या कीजे,
ज्ञान सुधारस पीजे, आशा औरन की क्या कीजे ॥
भटकत द्वार द्वार लोकन के, कुकर आशा धारि।
आतम अनुभव रस के रसिया उतरे न कबहु खुमारि ॥आशा० ॥
आशा दासी के जे जाया ते जन जग के दासा।
आशा-दासी करे जो नायक, लायक अनुभव खासा ॥आशा० ॥
मनसा प्याला प्रेम मसाला, ब्रह्म अग्नि प्रजाली।
तन भाठी अबटाय पिए कस, जागे अनुभव लाली ॥आशा० ॥
आगम प्याला पीओ मतवाला, चीन्हि अध्यातम वासा।
'आनंदघन' चेतन वहीं खेले, देखे लोक तमासा ॥आशा० ॥

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[२४६]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

विषय सूची

विषय

१. गिरिराज सम्मेदशिखरजी का प्रथम दर्शन
२. आचार्यदेव करुणा करके विपरीत मान्यता छुड़ाते हैं
३. स्वर्णिम-सुप्रभात
४. ज्ञानी की अंतर्दृष्टि की महिमा
५. भगवान का साधा हुआ और बताया हुआ परिनिर्वाण का पंथ
६. आध्यात्मिक पद
७. आदि तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभदेव
८. प्रश्नोत्तर
९. क्या व्यवहार रत्नत्रय सच्चा मोक्षमार्ग है
१०. समाचार संग्रह

मोक्षमार्गप्रकाशक—

जयपुर ढूँढ़ारी भाषा में चतुर्थ आवृत्ति श्री जैन सस्ती ग्रंथमाला देहली द्वारा प्रकाशित की २०० प्रतियाँ विक्रयार्थ आई हैं; इस ग्रंथ में पंडितजी कृत रहस्यपूर्ण चिट्ठी तथा कविवर बनारसीदासजी कृत परमार्थ वचनिका, तथा निमित्त उपादान चिट्ठी भी छपी है। मूल्य २.२५ पैसे, पोस्टेज अलग।

मिलने के पते—

(१) दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

(२) मुंशी सुमेरचन्द जैन अराइजनवीस ठि० २५९९
छत्ता प्रतापसिंह, दरीबाकलां, देहली-६

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

अक्टूबर : १९६५ ☆ वर्ष २१वाँ, आश्विन, वीर नि०सं० २४९१ ☆ अंक : ६

(गिरिराज सम्मेदशिखरजी का)

प्रथम दर्शन

(एक संस्मरण)

(फाल्गुन शुक्ला ५, संवत् २०१३)

अहा, भरतक्षेत्र के यह तीर्थाधिराज चालीस-चालीस मील दूर से दर्शन देकर भव्य जीवों को आकर्षित कर रहे हैं। गया शहर से प्रस्थान करके १२१ मील दूर सम्मेदशिखर धाम की ओर बढ़ रहे हैं। कई दिनों से जिसकी राह देख रहे थे, उस पावन तीर्थधाम में पहुँचने की आज की यात्रा अति उल्लास पूर्ण थी। बस, अब इष्ट धाम में पहुँचना है.. स्वामीजी के अंतर में मोक्षगामी तीर्थंकरों एवं संतों के स्मरण घूम रहे थे और बाह्य में उनके नयन शिखरसम्मेद की ओर टकटकी लगा रहे थे। अभी शिखरजी दिखायी देंगे... अभी दिखायी देंगे! कैसे होंगे वे धाम!!—ऐसे रटन पूर्वक गुरुदेवजी बार-बार पूछते थे - क्या शिखरजी दिख रहे हैं? और फिर नेत्र मूँदकर वे सम्मेदशिखर पर विचरे हुए साधक संतों की टोलियों को अंतर में निहारते थे.. फिर दूसरे ही क्षण इसप्रकार दूर-दूर दृष्टि दौड़ाकर देखते थे मानों सम्मेदशिखर पर से संतों के स्वर सुनाई दे रहे हों। कुछ ही देर में ३०-४० मील की दूरी से सम्मेदशिखर सिद्धिधाम के दर्शन होने पर गुरुदेव का हृदय प्रसन्नता से नाच उठा।

अहा! उस सिद्धिधाम के प्रथम दर्शन के उल्लास की क्या बात कहें! जिसप्रकार चंद्रमा दूर रहकर भी समुद्र को आनंद से उछालता है और अपनी ओर खींचता है, उसीप्रकार सम्मेदशिखर धाम अभी दूर होने पर भी भक्तहृदयों में आनंद की तरंगें उछालता हुआ उन्हें अपनी ओर आकर्षित

कर रहा था.. अथवा सिद्धालयवासी सिद्ध भगवंत मानों साधकों के हृदय को सिद्धपद की ओर उल्लसित कर रहे थे।—ऐसी अंतर की ऊर्मियाँ जागृत हो रही थीं। दूर-दूर का दर्शन भी स्वामीजी के हृदय में आनंद उत्पन्न कर रहा था... जिसप्रकार थोड़ी दूर रही मुक्ति का दर्शन भी मोक्षार्थी के हृदय में आनंद उत्पन्न करता है। अहो, भेंटे-भेंटे आज सिद्धिधाम! सम्यग्दर्शन हो और निर्विकल्प ध्यान में सिद्धपद की अपने अंतर में ही भेंट होने से जो आनंद का अनुभव होता है, वह जल्दी व्यक्त नहीं होता किंतु धर्मातमा के हृदय की गंभीरता में ही समाया रहता है; उसीप्रकार जीवन में सम्मेदशिखर के प्रथम दर्शन से उल्लसित किसी अकथनीय आनंद की ऊर्मियाँ क्षणभर के लिये वाणी को रोक देती हैं और हृदय की गंभीरता में ही वे समा जाती हैं। **अहा, कैसा अद्भुत है वह दर्शन!**

स्वामीजी तो पारसनाथ टूंक पर टक लगाकर देखते ही रहे। पारस टूंक के ध्येय से मार्ग भी जल्दी-जल्दी कट रहा था... जिसप्रकार सिद्धपद के ध्येय से चिदानंद स्वभाव में दृष्टि लगाने से साधक का मार्ग जल्दी पूरा हो जाता है। माता को देखकर जिसप्रकार बालक उससे लिपटने को दौड़ता है, उसीप्रकार मोटरें शिखरजी से भेंटने के लिये दौड़ रही थीं। स्वामीजी की मोटर १६ मील लम्बी घनी झाड़ियों के बीच से गुजर रही थी। वन के वृक्ष ऐसे सुहावने ढंग से खिर रहे थे मानों वे वनवासी साधक संतों को धूप से बचाने के लिये मधुर छाया फैलाकर उनकी सेवा कररहे हों! सुन्दर पर्वतमालाओं और सुरम्य वनराशि के बीच से मोटर गुजर रही थी उस समय न तो आकाश दिखायी देता था और न धरती; मात्र वृक्षों के ऊपरी भाग दिखायी देते थे.. मानों दुनिया के वातावरण से दूर-दूर किसी गंभीर अतल गहराई में उतर गये हों! वनराशि से आच्छादित वह १६ मील लम्बा मार्ग इतना मनोहर है मानों उपशम भाव की छाया फैल रही हो। विविध रंग के पुष्पों से सुशोभित वनराशि भी मानों रत्नत्रय के फल देने की तैयारी कर रही हो—ऐसी मनोहर एवं प्रफुल्ल है। ऐसे प्रसन्न और प्रशांत वातावरण में अनंत साधकों की साधनाभूमि को देखकर यात्रियों का हृदय भी प्रसन्न और प्रशांत होकर साधना के विचारों में डूबने लगता है। सिद्धिधाम की छाया में पहुँचने पर तो ऐसा लग रहा था मानों सिद्ध-भगवंतों के निकट आ गये हों और अब अनंत सिद्धों की नगरी में जाने की तैयारी हो रही है। अहा, सम्मेदशिखर के आसपास का वैभव देखकर तीर्थधाम की महिमा का स्मरण हो रहा था। शिखरजी अर्थात् मानों सिद्धभगवान और यह सब आस-पास के अनेक छोटे पर्वत मानों सिद्धि की साधना करनेवाले मुनिवर। सिद्ध भगवान के आस-पास मानों मुनियों

के समूह बैठे हों! इसप्रकार शिखरजी पर्वत को अनेक छोटे-छोटे पर्वत घेरे हुए हैं, और जिसप्रकार साधक जीव सिद्ध भगवान की महत्ता को प्रसिद्ध करते हैं, उसीप्रकार वे छोटे पर्वत महान शिखरजी धाम की महत्ता को प्रगट करते हैं। सबसे ऊँची सुवर्णभद्र टूँक तो मानों पुकार रही है कि—'आओ रे.. आओ..! यह है भारत का शाश्वत सिद्धि धाम!' उसे देखकर शिखरजी धाम के दर्शनों को तीव्र उत्कंठा जागृत होती है। जिसप्रकार मुनि की परिणति मोक्ष की ओर दौड़ती है उसीप्रकार 'कल्याणवर्षिणी' मोक्षधाम की ओर दौड़ रही थी... और शिखरजी को देखकर तो यह ऐसी दौड़ी... ऐसी दौड़ी... कि जैसी क्षपकश्रेणी में मुनि की परिणति केवलज्ञान की ओर दौड़ती है। ज्यों-ज्यों निकट पहुँचने पर सिद्धिधाम के स्पष्ट दर्शन हो रहे थे, त्यों-त्यों स्वामीजी का हृदय आनंद से उछल रहा था। बिना बोले ही उनके मुद्रा से ऐसे भाव प्रगट हो रहे थे कि—अहा! मेरे प्यारे नाथ से आज भेंट हुई... धन्य घड़ी! धन्य जीवन!

['मंगल तीर्थयात्रा' नामक गुजराती पुस्तक से]

गुजराती मूल लेखकर ब्रह्मचारी हरिलाल जैन (सोनगढ़)

आराधक धर्मात्मा के दर्शन से मुमुक्षु के हृदय में जैसी आनन्द की ऊर्मि जागृत होती है, वैसी किसी भी पदार्थ में जागृत नहीं होती।

धर्मी को देखकर ऐसा लगता है कि—वाह! धन्य है तुम्हारा अवतार! तुमने अतीन्द्रिय आत्मा को स्वानुभव में लिया है... तुम परमेश्वर के मार्ग पर चल रहे हो!

आचार्यदेव करुणा करके

विपरीत मान्यता छुड़ाते हैं

(समयसार, गाथा ३९ से ४४ के प्रवचन से)

जीव का स्वरूप न जाननेवाले तथा विपरीत माननेवाले जीवों को करुणापूर्वक समझाते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि— भाई! आत्मा का वास्तविक स्वरूप शुद्ध चैतन्यमय, जड़ से अत्यंत भिन्न है—ऐसा ज्ञानी स्वसंवेदन से अनुभव करते हैं—वह स्वरूप हमने अनेक प्रकार से समझाया। ऐसे स्वरूप को समझने का तू प्रयत्न कर... मरकर भी तू ऐसे तत्त्व को जान.. एक बार उसके हेतु जीवन अर्पित कर दे। जो ऐसे निज चैतन्यतत्त्व को नहीं जानते, वे चैतन्य के वीर्यरहित नपुंसकरूप से अत्यंतविमूढ़ हैं; चैतन्य की विराधना करके वे निगोद की अत्यंत नपुंसकदशा को साध रहे हैं। सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा तो चैतन्य के पुरुषार्थ द्वारा सिद्धपद की साधना कर रहे हैं। इसप्रकार आमने-सामने दो मुख्य गतियाँ हैं। चैतन्य के आराधक सम्यक्त्वी सिद्धपद को साधते हैं और चैतन्य की विराधना करनेवाले जीव निगोद की ओर जा रहे हैं। अरे, निगोद के दु:खों की क्या बात! सातवें रौरव नरक के दु:खों की अपेक्षा निगोद का दु:ख अनंत गुणा है; उस दु:ख का वेदन तो वही जीव कर सकता है और केवली परमात्मा ही जान सकते हैं। वचन द्वारा उसका वर्णन नहीं हो सकता। जिसप्रकार एक ओर सिद्धसुख का भी वचन द्वारा वर्णन नहीं होता, उसीप्रकार निगोद के दु:ख का भी वचन द्वारा वर्णन नहीं हो सकता। निगोद में अनंतानंत जीव हैं। संसार में जीव का अधिक काल तो ऐसे निगोद के दु:खों में ही बीता है। उसमें से अनंत काल में महा कठिनता से त्रसपर्याय प्राप्त की, मनुष्य हुआ, जैनधर्म मिला, सत्समागम-सच्चे ज्ञानी संत धर्मात्मा का महान योग प्राप्त हुआ, सत् का श्रवण मिला, बुद्धि मिली—तो हे जीव! ऐसे अवसर में परम प्रयत्न करके तू अपने चैतन्यतत्त्व को समझ! अनंत काल का संसार भ्रमण नरक-निगोद के महान दु:खों से भरपूर है; उससे छूटने का यह अवसर है। इस अवसर को चूक गया तो कहीं पार नहीं लगेगा यदि चैतन्य को समझने की ओर प्रयत्न नहीं किया तो तेरा वीर्य नष्ट हो जायेगा। अनंत बार द्रव्यलिंगी साधु हुआ, अनेक लब्धियाँ और चमत्कार प्रगट हुए, भारी बाह्य त्याग किया, व्रत-तप किये—इसप्रकार शुभराग में ही तन्मयरूप से वर्तता हुआ उसी को पुरुषार्थ मानता है, परंतु राग से भिन्न ऐसे चैतन्यतत्त्व को श्रद्धा-ज्ञान में लेने का प्रयत्न जो नहीं करते, ऐसे जीवों को आचार्यदेव नपुंसक

कहते हैं। भले ही पुरुष हो या महान देव हो, परंतु वह चैतन्य के पुरुषार्थ रहित होने से नपुंसक है और चैतन्य की विराधना से वह अल्प काल में निगोद का नपुंसक होगा। संसार में त्रसपर्याय का काल अल्प है, उसमें यदि चैतन्य की आराधना कर लेगा तो सिद्धपद प्राप्त करेगा और चैतन्य की विराधना करेगा तो निगोद पर्याय में जायेगा। निगोद में जीव अपने प्रचुर भावकलंक से ही रहा है। प्रचुर भावकलंक कहो या चैतन्य की विराधना कहो, उसका फल निगोद है।

जगत में चैतन्य को न जाननेवाले अज्ञानी बहुत हैं। वे अज्ञानी अनेक प्रकार से पर को तथा राग को ही आत्मा कहते हैं; उन मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी, आत्मा के विराधक जीवों के विपरीत अभिप्राय के प्रकार समझाकर आचार्यदेव जिज्ञासु शिष्यों को वह विपरीतता छुड़ाते हैं।

अनेक अज्ञानी जीवों में से कोई तो ऐसा मानते हैं कि राग-द्वेषरूप जो मलिनभाव हैं, वही आत्मा है; राग-द्वेष से भिन्न आत्मा हमें दिखायी नहीं देता। जिसप्रकार कोयला कालिमा से पृथक् दिखायी नहीं देता, उसीप्रकार राग-द्वेषरूप कालिमा से भिन्न कोई चैतन्य हमें दृष्टिगोचर नहीं होता। आचार्यदेव कहते हैं कि अरे मूढ़! कोयला कालिमा से भिन्न नहीं है, परंतु सुवर्ण तो कालिमा से भिन्न दिखायी देता है न? जिसप्रकार शुद्ध सोना कालिमा से पृथक् दिखायी देता है, उसीप्रकार भेदज्ञानी धर्मात्मा राग-द्वेषरूप कालिमा से भिन्न चैतन्यद्रव्य का अपने स्वानुभव से अनुभव करते हैं। भगवान सर्वज्ञदेव अरिहंत परमात्मा ने पुद्गल परिणामों से भिन्न चैतन्य-स्वभावमय जीवद्रव्य कहा है, आगम में भी अध्यवसायों से भिन्न चैतन्यमय जीव कहा है। सम्यग्ज्ञान की युक्ति से भी जीव चैतन्यस्वभावमय ही सिद्ध होता है, क्योंकि राग-द्वेष तो जीव से पृथक् हो जाते हैं, वे कहीं जीव की सर्व पर्याय में नहीं रहते और चैतन्य तो जीव की सर्व पर्यायों में रहता है—इत्यादि युक्तियों से भी ऐसा ही निश्चित होता है कि जीव ज्ञानस्वभावमय ही है, वह राग-द्वेषमय नहीं है और भेदज्ञानी स्वसंवेदन द्वारा ऐसे जीव का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। इसप्रकार आगम, युक्ति और अनुभव से संतों ने चैतन्यस्वभावमय जीवद्रव्य को जड़ से तथा राग से अत्यंत भिन्न प्रसिद्ध किया है। अरे जीव! तू ऐसा आगम सुनकर, सर्वज्ञ तथा संतों की वाणी में चैतन्यस्वभाव का श्रवण करके, सम्यक् युक्ति द्वारा उसका निर्णय करके अंतर में उसका स्वानुभव कर। अन्य सब विपरीत मान्यता के कोलाहल छोड़ और अंतर में निरंतर प्रयत्न करके अपने चैतन्यतत्त्व को पर से भिन्न देख। लगातार उत्कृष्टरूप से छह महीने तक सच्ची लगन लगाने से तुझे अवश्य अपने चैतन्य के विलास का आनंद सहित अनुभव होगा। ●●

स्वर्णिम-सुप्रभात

सुप्रभातरूप संतों का आत्मा स्वयं तो आनंदरूप है,
और अन्य जीवों के लिये भी वह आनंद का कारण है।

(नूतन वर्ष का मंगल-प्रवचन : वीर संवत् २४८८)

आज नूतन वर्ष है। आत्मा में सम्यग्दर्शनरूपी सुप्रभात का सूर्य उदित हो, वही सच्चा और उत्कृष्ट सुप्रभात है। आत्मा की शक्ति में से अनंत चतुष्ट प्रगट हों—केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंत सुख एवं अनंत वीर्यरूपी स्वचतुष्ट का प्रगट परिणमन होकर जगमगाता हुआ सुप्रभात प्रगट हो, वह उत्कृष्ट सुप्रभात है। वह मंगल प्रभात उदित हुआ सो हुआ, अब कभी वह अस्त नहीं होगा। बाह्य में तो कार्तिक शुक्ला १ का सूर्य अनंत बार उगा है और अस्त हुआ है, परंतु चैतन्य के अनुभव में से जो अनंत चतुष्टय प्रगट हुए हैं, वे सादि-अनंत हैं। सादि-अनंत आनंदरूप सुप्रभात प्रगट हुआ, वह महामंगल है, उसमें संसाररूपी रात्रि के अंधकार का अभाव है। मिथ्यात्वरूपी रात्रि का नाश करके सम्यग्दर्शनरूपी सूर्य प्रगट हुआ, वह भी मंगल सुप्रभात है और संसाररूपी रात्रि के अंधकार का नाश करके केवलज्ञानरूपी जगमगाता हुआ चैतन्यप्रकाश प्रगट हुआ, वह महामंगलरूप है। समयसार में ऐसे मंगल सुप्रभात की महिमा का कलश (२६८वाँ) है, उसमें कहते हैं कि:—

आत्मा में सुप्रभात का उदय होता है—किसप्रकार ? तो कहते हैं कि—प्रत्येक आत्मा में केवलज्ञानादि स्वभाव चतुष्ट शक्तिरूप से तो त्रिकाल विद्यमान हैं, उसमें अंतर्मुख होने से पर्याय में केवलज्ञानादि स्वचतुष्टय का उदय होता है। जो पुरुष अनेकांत द्वारा जानकर अनंत धर्म स्वरूप इस चैतन्य पिंड का आश्रय करता है, उसके चैतन्यविलास से शोभायमान अतीन्द्रियज्ञान तथा आनंदादि चतुष्टय से जगमगाता सुप्रभात उदय को प्राप्त होता है। विकार तो अंधकार है और चैतन्य तो प्रकाश है। इसप्रकार राग और ज्ञान के भेदज्ञान द्वारा आत्मस्वभाव की दृष्टि करने से अतीन्द्रिय आनंदमय अमृत के स्वादसहित सम्यग्दर्शनरूपी सुप्रभात उदित होता है। जिसके ऐसा सुप्रभात उदित हुआ जिसके आत्मा में से अनादिकालीन अंधकार नष्ट हुआ और अपूर्व प्रकाश फैल गया। वह आत्मा स्वयं तो आनंदरूप है और अन्य (उसका सेवन करनेवाले) जीवों के लिये भी वह आनंद का कारण है।

ऐसा सुप्रभात कैसे उदित होता है ?—तो कहते हैं कि—चिदानंदस्वभाव का आश्रय और विभाव का आश्रय नहीं—इसप्रकार चैतन्यभूमिका के आश्रय से चैतन्यकलिका खिलकर अनंत पंखुरियों से सुशोभित केवलज्ञानरूपी कमल विकसित हो जाता है। सम्यग्दर्शनरूपी प्रभात भी चिदानंदस्वभाव के आश्रय से होता है और केवलज्ञानरूपी प्रभात भी उसी के आश्रय से होता है। यह सम्यग्दर्शन और केवलज्ञान दोनों आनंदमय सुप्रभात हैं, दोनों का शुद्ध प्रकाश अतिशय है। अहो, जहाँ सम्यग्दर्शन और केवलज्ञानरूपी दीपक प्रगट हुए, वहाँ आत्मा में दीपावली (अर्थात् सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायरूप दीपकों की माला) प्रगट हुई और सादि-अनंत मंगलरूप अपूर्व नूतन वर्ष का प्रारम्भ हुआ। जिसे चैतन्यस्वरूप आत्मा की अनुभूति प्रगट हुई, वह जीव मोक्ष के निकट आया और उसके सच्चा सुप्रभात उदित हुआ।

और चैतन्यतत्त्व अनंत आनंद रस से—चैतन्यरस से परिपूर्ण है; उसके आश्रय से जो सुप्रभात प्रगट हुआ, वह आनंद में सुस्थित है; भगवान आत्मा आनंद के अनुभव में स्थिर हुआ है। आनंद का स्वाद लेने में तल्लीन होकर स्थिर हुआ है। जो ऐसी दशा प्रगट हुई, वह सदा अस्खलित है, उसमें कर्मादि की कोई बाधा नहीं है, उसमें पुनः स्खलना नहीं है, विघ्न नहीं है, भंग नहीं है। चैतन्य के आश्रय से प्रगट हुआ वह सुप्रभात चैतन्य के साथ ही सदा अस्खलितरूप से बना रहेगा, उसके प्रकाश को कोई रोक नहीं सकता; उसमें विकार का कोई कलंक नहीं है और कर्म का कोई आवरण नहीं है; मात्र शुद्ध आनंद से परिपूर्ण है। आत्मा में जहाँ ऐसे अपूर्व वर्ष का प्रारम्भ हुआ, अपूर्व पर्याय प्रगट हुई, वहाँ वह आनंदानुभवरूपी मिष्टान्न के भोजन करता है। लो, यह नये वर्ष की मिठाई परोसी जा रही है। सुप्रभात अर्थात् सम्यग्दर्शन से लेकर केवलज्ञान तक की पर्यायरूपी सुप्रभात है, वह अतीन्द्रिय आनंद के अनुभव से भरपूर है। **सम्यग्दर्शन भी अतीन्द्रिय आनंद से परिपूर्ण है** और केवलज्ञान पूर्ण आनंद से भरपूर है। अहा, भगवान आत्मा असंख्यप्रदेशों में आनंदमय चैतन्य-दीपकों से जगमगा उठा—शोभायमान हो उठा, वह मंगल प्रभात है। उसका प्रकाश अब किसी से विचलित नहीं हो सकता, इसलिये उसकी ज्योति अचल है। केवलज्ञान की या सम्यग्दर्शन की ज्योति अचल है। इसप्रकार चैतन्य में स्थिर होकर स्ववीर्य से केवलज्ञानादि अनंत चतुष्टय की रचना करके भगवान आत्मा सादि-अनंत सुप्रभातरूप से सुशोभित होता है—वह अपूर्व मांगलिक है।

अनेकांत दृष्टि द्वारा चिदानंदस्वभाव का जिसने निर्णय किया, उसको स्वसन्मुखता में

चैतन्य के ज्ञानानंद से विलसित, शुद्ध प्रकाश से शोभायमान, आनंदमय सुप्रभात प्रगट होता है। अहा, ज्ञानस्वरूप आत्मा को पहिचान कर जिसने उसमें प्रवृत्ति की तथा परभावों से निवृत्ति की और इसप्रकार चैतन्य भूमिका का आश्रय किया, उसके श्रद्धा-ज्ञान-आनंद एवं वीर्य से जगमगाते हुए मंगल-प्रभात का उदय हुआ... आत्मा में यह प्रभात उदित हुआ सो हुआ... अब पुनः कभी वह अस्त नहीं होगा; उसके विकास को कोई रोक नहीं सकता।

अहा, ऐसा सुप्रभात प्रगट करनेवाले संत, जंगल में बैठे-बैठे केवलज्ञान-भंडार की खोज में संलग्न, अंतर की गहराई में उतर कर आनंदसागर में मग्न होते हैं... उन्हें देखकर चक्रवर्ती जैसों को भी ऐसा लगता है कि—धन्य प्रभो! आप चैतन्य की साधना कर रहे हैं... अभी-अभी आपका आत्मा अनंत चतुष्टयरूप साध्य को प्रगट करके सुप्रभातरूप से जगमगा उठेगा।—ऐसा कहकर वे चक्रवर्ती भी उनके चरणों में मस्तक झुकाते हैं।

चैतन्यस्वभाव में अंतर्मुख होकर जो श्रद्धा करेगा, उसे अल्पकाल में केवलज्ञान प्रकाश से जगमगाता हुआ सुप्रभात पूर्णतया खिल उठेगा—ऐसा संतों का आशीर्वाद है। इसप्रकार नूतन वर्ष का मांगलिक हुआ। [—समयसार, कलश २६८ के प्रवचन से]

लगन और प्राप्ति

समस्त जगत के कोलाहल को छोड़कर सच्चे चैतन्य की खोज में लग जा! चिदानंदतत्त्व क्या है—उसका पता लगाने के लिये उसकी लगन लगाकर छह महिने तक उसके अध्ययन में लग जाये तो अवश्य अंतरधाम में तुझे अपने चैतन्य की आनंद सहित प्राप्ति होगी। अन्य सब कल्पना छोड़कर एक चैतन्य के ही चिंतन में लग जाये तो तुझे अपने में ही अवश्य उसकी प्राप्ति होगी। सच्ची लगनपूर्वक चैतन्य का पता लगाना चाहे और उसका पता न लगे, ऐसा होता ही नहीं। सच्ची लगन से प्रयत्न करने पर चैतन्यतत्त्व अवश्य स्वानुभव में आता है।

ज्ञानी की अंतर्दृष्टि की महिमा

जिस क्रिया के संयोग में अज्ञानी को बंधन होता है, उसी क्रिया के संयोग में ज्ञानी को निर्जरा होती है, इसका कारण ? ज्ञानी के अंतर में जो अचिंत्य भेदज्ञान परिणति वर्त रही है, वही निर्जरा का कारण है, उसकी अचिंत्य महिमा आचार्यदेव ने निर्जरा अधिकार में समझायी है।

जहाँ शुद्ध चैतन्यस्वभावी आत्मा तथा रागादि आस्रवों के बीच भेदज्ञानरूप संवर हो, वहीं निर्जरा होती है। भेदज्ञान के बिना निर्जरा नहीं होती। जिसे पृथक् करना है, उसे अपने से पृथक् जाने बिना पृथक् करने की क्रिया कैसे करेगा ? भगवान आत्मा की ख्याति-प्रसिद्धि राग द्वारा नहीं है, चैतन्यभाव द्वारा ही भगवान आत्मा की प्रसिद्धि है। जिसने भेदज्ञान द्वारा भगवान आत्मा को चैतन्यभाव से प्रसिद्ध किया है—ऐसे धर्मात्मा को चैतन्यधाम में लीनता द्वारा निर्जरा होती है। राग और ज्ञान की भिन्नता के बदले जो राग को लाभ का कारण मानता है, उसकी अशुद्धता दूर नहीं होती और निर्जरा होती नहीं है। राग में एकता, वह महान अशुद्धता है, वह छूटे बिना शुद्धता या संवर-निर्जरा नहीं होते।

धर्मात्मा की परिणति शुद्धात्मा के आश्रय में राग से भिन्न ही परिणमित होती है, इसलिए पूर्वकर्म के उदयों की उसके निर्जरा ही होती जाती है। उदयकाल में वह उदय में तन्मय नहीं वर्तता परंतु चैतन्यरस में निमग्न वर्तता है, इसलिये बाह्य उदय उसे बंध का कारण हुए बिना उसकी निर्जरा ही होती है। धर्मी जीव को बाह्य में पुण्य का उदय नहीं होता—ऐसा नहीं है; उदय भले ही हो; परंतु उस उदयकाल में धर्मी को भेदज्ञान के बल से ज्ञानपरिणति में राग का अभाव ही है, इसलिये उसकी उस परिणति के बल से उसे निर्जरा ही होती जाती है। अहो, यह सम्यक् श्रद्धा का बल है। सम्यक् श्रद्धा की शक्ति से राग के एक अंश को भी धर्मी जीव अपने चैतन्य भाव में स्वीकार नहीं करता। मेरा आत्मा तो चैतन्य का सागर है—ऐसे स्वभाव की दृष्टि में धर्मी जीव को समस्त जगत के प्रति वैराग्य वर्तता है। उसे बाह्य संयोग में चेतन-अचेतन द्रव्य का उपभोग दिखायी दे, तथापि उसकी अंतर्दृष्टि के बल से उसे निर्जरा ही होती है। अज्ञानी को मिथ्यादृष्टि के कारण राग में एकत्व बुद्धि के सद्भाव से जो बंध का निमित्त होता है, वही संयोग ज्ञानी को निर्दोष दृष्टि के कारण, राग में एकत्वबुद्धि के अभाव से निर्जरा का ही निमित्त होता है। कोई ज्ञानी हरी (साग-सब्जी आदि) खाते

हों और कोई अज्ञानी न खाता हो, उस समय उनमें से ज्ञानी को तो निर्जरा होती है और अज्ञानी को बंधन होता जाता है।—क्या कारण है ?—कि अंतर की दृष्टि कहाँ पड़ी है, इस बात की मुख्यता है। ज्ञानी की दृष्टि समस्त जगत के राग से हट गई है, इस बात की मुख्यता है। ज्ञानी की दृष्टि समस्त जगत के राग से हट गई है और चैतन्यस्वभाव की दृष्टि हुई है; उस दृष्टि में राग के अंश का भी स्वामित्व नहीं है, वहाँ बाह्य पदार्थ की तो बात ही क्या ?—ऐसी दृष्टि ही निर्जरा का कारण है और अज्ञानी चैतन्य से हटकर सारे जगत के राग का तथा संयोग का स्वामी होकर मिथ्याभाव में वर्तता है; वह मिथ्याभाव ही बंध का कारण है।

यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बाह्य वस्तु के उपभोग को कहीं धर्मी की निर्जरा का कारण नहीं बतलाना है; परंतु उस उपभोग के काल में ज्ञानी के अंतर में जो अचिंत्य भेदज्ञान परिणति वर्त रही है, वही निर्जरा का कारण है। अज्ञानी बाह्य में त्यागी होकर बैठ जाये, तथापि अंतर में भेदज्ञान के अभाव के कारण, राग में ही उसकी परिणति वर्तने के कारण उसे बंधन ही होता है। अंतर्दृष्टि को जाने बिना यह बात समझ में नहीं आ सकती। **अहो, ज्ञानी की श्रद्धाशक्ति का बल अचिंत्य है...** कि उस शक्ति के कारण उसे अशुभ के समय भी निर्जरा होती रहती है। देखो, सम्यक्त्व की महिमा!!—कि जिसके सामर्थ्य से उपभोग के काल में भी निर्जरा ही होती रहती है। यह ज्ञानी की अंतर-परिणति की अचिंत्य महिमा है। आत्मा के आनंद का उपभोग जहाँ प्रगट हुआ, वहाँ रागादि के या बाह्य पदार्थों के उपभोग में से दृष्टि ही उड़ गई, रागादि के एक अंश का भी उपभोग धर्मी की दृष्टि में नहीं है। उस दृष्टि का रहस्य बाहर से समझ में आये वैसा नहीं है। जितना अशुभराग है, उतना बंधन है, परंतु वह अति अल्प है, उस बंधन के काल में भी सम्यक्त्व की शक्ति से अनंतगुनी निर्जरा होती रहती है; इसलिये धर्मी को निर्जरा की ही मुख्यता है। जो अल्प बंधन है, उसका स्वामित्व नहीं है।

सम्यग्दृष्टि 'ज्ञानी' है और ज्ञानी को राग-द्वेष-मोह का अभाव है, इसलिये वह 'विरागी' है। किसी भी प्रसंग पर ज्ञानी को मिथ्यात्व सम्बन्धी राग किंचित् नहीं होता; इसलिये किसी भी प्रसंग में उसके मिथ्यात्व संबंधी बंधन तो किंचित् होता ही नहीं। जहाँ भिन्न चैतन्य की प्रतीति हुई, वहाँ परिणति राग से भी अलग हो गई, स्वभाव और विभाव की धारा अलग हो गई, वहाँ स्वभाव धारा बंधन का कारण कैसे होगी ? ज्ञानी को स्वभाव धारा सतत चलती रहती है और उसके बल से निर्जरा ही होती है।—कौन से ज्ञानी ?—तो कहते हैं कि—चतुर्थ गुणस्थान में विद्यमान गृहस्थ

धर्मात्मा ज्ञानी है, उसे भी ऐसी दशा होती है। यह कोई ध्यान में लीन बड़े-बड़े मुनियों की ही बात नहीं है, परंतु सम्यग्दृष्टि अविरत गृहस्थ हो, स्त्री हो, या तिर्यंच हो—उनकी भी ऐसी अंतरदशा होती है और उनको चेतन-अचेतन के उपभोग के काल में भी निर्जरा ही होती रहती है तथा वे वैरागी हैं। अज्ञानी ऊपर-ऊपर से देखता है, ज्ञानी अंतर का अंतर देखते हैं। ज्ञानी सामग्री का उपभोग करते हैं- ऐसा अज्ञानी देखता है, किंतु ज्ञानी तो ज्ञानधारारूप से परिणमित होता हुआ तथा राग से विरक्त रहता हुआ, उस काल कर्मों की निर्जरा ही करता है। **सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि में अनंतगुना अंतर है। अज्ञानी बाहर से वैरागी दिखता हो, तथापि अंतर में राग की रुचि के अभिप्राय के कारण वह अनंत राग से रंगा हुआ है और कर्म बंध करता है, उसने किंचित्मात्र राग छोड़ा है—ऐसा ज्ञानी नहीं कहते। और सम्यग्दृष्टि के पास कदाचित् ऐसा ठाटबाट—वैभव हो जो अज्ञानी के पास न हो, तथापि सम्यग्दृष्टि परम वैरागी है; उस वैराग्यदशा को स्थूल अज्ञानी नहीं जान सकते।**

भरत चक्रवर्ती छह खण्ड साधने के लिये गये हैं। ६०००० वर्ष बीत गये हैं। यशस्वती माता को ऐसा विचार आता है कि—अरे, ६०००० वर्षों से पुत्र का मुँह नहीं देखा; इसलिये वहीं जाकर भरत को देखने का मन होता है। विमान में बैठकर वहाँ पहुँचती हैं और माताजी को देखते ही छियानवें करोड़ के लश्कर में आनंद एवं आश्चर्य से कोलाहल मच जाता है कि—माताजी पधारीं! माताजी पधारीं!! कोलाहल सुनकर भरत चक्रवर्ती को लगता है कि—अरे, यह क्या हुआ? काहे का कोलाहल है!!—ऐसा कहते हुए तलवार खींचकर तैयार हो जाते हैं। फिर जब खबर मिलती है कि माताजी पधारी हैं कि तुरंत विनयपूर्वक सन्मुख जाकर बहुमान करते हैं और भक्ति सहित माताजी की आरती उतारते हैं। माताजी नहीं.. नहीं कहती हैं किंतु भरत कहते हैं कि—माताजी, आप हमें न रोको, हम आपके बालक हैं.. देखो, यह छह खंड का चक्रवर्ती! जिसके वैभव का कोई पार नहीं है, तथापि दृष्टि में एक चिदानंदस्वभाव के अतिरिक्त अन्य कहीं अंशमात्र स्वामित्व नहीं है, समस्त जगत से विरक्त हैं, माता भी धर्मात्मा हैं। चक्रवर्ती आरती उतारता है किंतु अंतर में भिन्नता की प्रतीति है। हमारी महत्ता हमारे चैतन्य में है—ऐसी सम्यक् प्रतीति में धर्मात्मा को निर्जरा ही होती रहती है। भेदज्ञान द्वारा जो वीतरागी दृष्टि प्रगट हुई है, उसकी यह महिमा है।

[समयसार, गाथा १९३ के प्रवचन से]

भगवान का साधा हुआ और बताया हुआ

परिनिर्वाण का पंथ

[कार्तिक कृष्णा ३०, वीर सं० २४८८ : शील प्राभृत गाथा ११-१२ के प्रवचन से]

आज के दिन भगवान महावीर परमात्मा ने पावापुरी से मोक्ष प्राप्त किया। भगवान का आत्मा आज पूर्ण निर्मल पर्यायरूप परिणमित हुआ। आज भगवान सिद्ध हुए। पावापुरी में इन्द्रों तथा राजाओं ने निर्वाण का महामहोत्सव मनाया। उस दीपावली का तथा मोक्ष के नूतन वर्ष का आज दिन है। भगवान के मोक्ष को आज २४८८ वाँ वर्ष लगा। भगवान पावापुरी से स्वभाव ऊर्ध्वगमन करके ऊपर सिद्धालय में विराजमान हैं। अनादि काल में जो कभी नहीं हुई थ्ी ऐसी अपूर्व दशा आज भगवान को पावापुरी में प्रगट हुई। इसलिये पावापुरी भी तीर्थधाम है। सम्मेदशिखर की यात्रा के समय पावापुरी की यात्रा करने गये, तब वहाँ अभिषेक किया था। वहाँ (सरोवर के बीच) जिस स्थान से भगवान मोक्ष पधारे, वहाँ भगवान के चरण कमल हैं। तीर्थंकरों का द्रव्य त्रिकाल मंगलरूप है। जो जीव केवलज्ञान प्राप्त करनेवाला है, उसका द्रव्य त्रिकाल मंगलरूप है।

भगवान का आत्मा त्रिकाल मंगलरूप है। उनका द्रव्य त्रिकाल मंगलरूप है, जहाँ से मोक्ष प्राप्त किया, वह क्षेत्र भी मंगल है, आज मोक्ष प्राप्त किया; इसलिये आज का काल भी मंगलरूप है; और भगवान के केवलज्ञानादिरूप भाव भी मंगलरूप है;—इसप्रकार भगवान महावीर परमात्मा द्रव्य-क्षेत्र-काल तथा भाव से मंगलरूप हैं। भगवान के मोक्ष प्राप्त करने पर यहाँ भरतक्षेत्र में तीर्थंकर का विरह हुआ। भगवान का स्मरण करके भगवान के भक्त कहते हैं कि—हे नाथ! आपने चैतन्यस्वभाव में अंतर्मुख होकर आत्मा की मुक्तदशा को साधा और ऐसा ही आत्मा वाणी द्वारा हमें दर्शाया। ऐसे स्मरण द्वारा श्रद्धा-ज्ञान की निर्मलता करे, वह मंगल काल है; जहाँ ऐसी निर्मल दशा प्रगट हो, वह मंगल क्षेत्र है। श्रद्धा-ज्ञान का जो भाव है, वह मंगलभाव है और वह आत्मा स्वयं मंगलरूप है। भगवान का मोक्ष कल्याणक मनाने के बाद इन्द्र और देव नंदीश्वर द्वीप जाते हैं और वहाँ आठ दिन तक उत्सव मनाते हैं।

आज भगवान के निर्वाण का दिन है और इस अष्ट प्राभृत में भी आज निर्वाण की ही गाथा

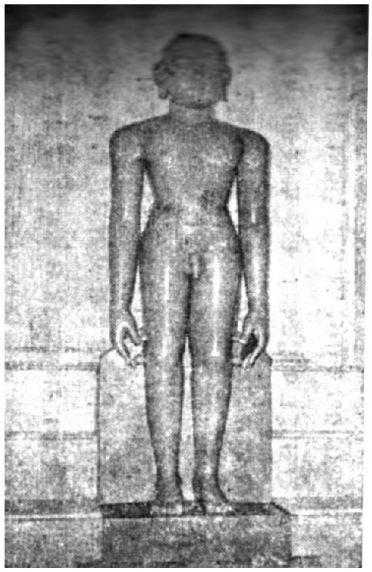

श्री १००८ भगवान महावीर

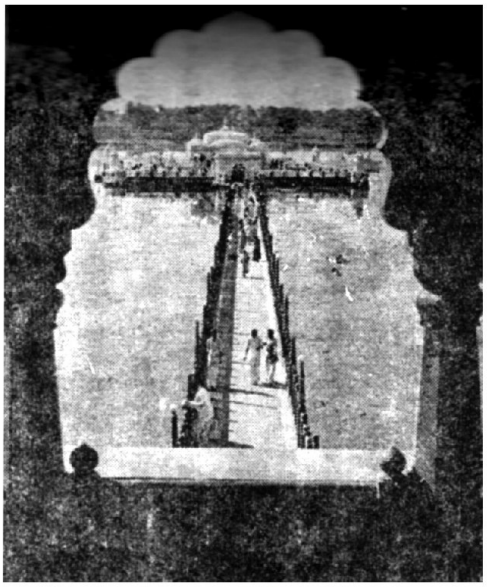

श्री पावापुरी सिद्धक्षेत्र

पढ़ी जा रही है। किस प्रकार निर्वाण होता है, कैसे पुरुष का निर्वाण होता है, वह बात शीलपाहुड़ की गाथा में कहते हैं—

णाणेण दंसणेण य तवेण चरिएण सम्मसहिएण।
होहदि परिणिव्वाणं जीवाणं चरित्तसुद्धाणं॥११॥

उपयोग को अंतर में गहराई तक ले जाकर धर्मात्मा शांतरस का अनुभव करते हैं। जिसप्रकार कुएँ की गहराई से पानी निकालते हैं, उसीप्रकार सम्यक् आत्मस्वभावरूप कारणपरमात्मा को ध्येयरूप से पकड़कर उसमें उपयोग को गहराई तक उतारने पर पूर्ण शुद्धता होती है और इस रीति से परिनिर्वाण होता है। परिनिर्वाण कोई बाहर की वस्तु नहीं है, परंतु आत्मा की पर्याय परम शुद्ध हो गई तथा विकार से छूट गई, उसी का नाम परिनिर्वाण है।

भगवान को मनुष्य शरीर होने के कारण निर्वाण हुआ अथवा वज्रऋषभनाराचसंहनन होने से निर्वाण हुआ – ऐसा नहीं है; परंतु सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र तथा सम्यक् तप से वे मुक्ति को प्राप्त हुए। आज के दिन भगवान महावीर ने मोक्ष प्राप्त किया था, उन्हीं का यह शासन चल रहा है। भगवान ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप द्वारा मोक्ष प्राप्त किया और वही उपदेश भी दे गये हैं। भगवान तो अपने परम आनंद में मग्न हैं, अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव कर रहे हैं। ऐसी निर्वाणदशा का आज का मंगल दिन है और निर्वाण के उपाय की यह गाथा भी मंगल है। इसप्रकार दीपावली मंगलरूप है।

जिन्होंने चैतन्य में ही उपयोग लगाकर बाह्य ध्येय से उपयोग को विमुख किया है अर्थात् विषयों से विरक्त होकर चैतन्यानंद के रस का स्वाद लेते हैं, आनंद के अनुभव को उग्र बनाकर उसका रसास्वादन करते हैं, वे पुरुष नियम से निश्चय से-ध्रुवरूप से निर्वाण को प्राप्त करते हैं। उन्हें सुमार्गशाली कहा है।

देखो, यह निर्वाण का ध्रुवमार्ग! दर्शनशुद्धिपूर्वक दृढ़ चारित्र द्वारा जो जीव चैतन्य में एकाग्र होता है, उसे बाह्य विषयों से विरक्ति हो जाती है। उसी का नाम शील है और ऐसा सम्यक्शीलवान जीव अवश्य निर्वाण को प्राप्त होता है। चैतन्य ध्येय को चूककर जिसने पर को ध्येय बनाया है, उस जीव को शील की रक्षा नहीं है। वह शरीर से भले ही ब्रह्मचर्य का पालन करता हो, परंतु यदि अंतर में राग की रुचि है तो उसके शील की रक्षा नहीं है, उसके दर्शनशुद्धि नहीं है। जिसने चैतन्यस्वभाव की रुचि प्रकट की है और राग की रुचि छोड़ी है, उसको चैतन्यध्येय से बाह्य विषयों का ध्येय छूट जाता है, ऐसा शील निर्वाणमार्ग में प्रधान है। इन दो गाथाओं में तो दर्शनशुद्धि के उपरांत चारित्र की बात करके साक्षात् निर्वाणमार्ग कहा है।

अब एक दूसरी बात करते हैं—किन्हीं ज्ञानी-धर्मात्मा को कदाचित् विषयों से सम्पूर्ण विरक्ति न हुई हो परंतु श्रद्धा बराबर है, मार्ग तो विषयों की विरक्तिरूप ही है—ऐसा यथार्थ मार्ग प्रतिपादन करते हैं, तो उन ज्ञानी को मार्ग की प्राप्ति कही गई है। सम्यक् मार्ग की स्वयं को प्रतीति है और उसी का बराबर प्रतिपादन करते हैं, परंतु अभी विषयों से अत्यंत विरक्तिरूप मुनिदशा आदि नहीं है, अस्थिरता है, तथापि वे ज्ञानी-धर्मात्मा मोक्षमार्ग के साधक हैं; उनको इष्टमार्ग की प्राप्ति है और वे यथार्थमार्ग बतलानेवाले हैं, इसलिये उनके उपदेश से दूसरों को भी सम्यक् मार्ग की प्राप्ति होती है। परंतु जो जीव विषयों से-राग से लाभ मनाये, उसे तो सम्यक् मार्ग की श्रद्धा ही नहीं है, वह तो उन्मार्ग पर है, तथा उन्मार्ग का बतलानेवाला है। धर्मात्मा को राग होता है परन्तु उसे वह बंध का ही कारण जानता है, इसलिये राग होने पर भी उसकी श्रद्धा में विपरीतता नहीं है; उसे मार्ग की प्राप्ति है और उसके उपदेश से अन्य जीव भी मार्ग की प्राप्ति कर सकते हैं।

अज्ञानी राग से स्वयं लाभ मानता है और राग से लाभ होना मनवाता है, तो वह स्वयं मार्ग से भ्रष्ट है तथा उसके पास से मार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती। अहा, चैतन्य के श्रद्धा, ज्ञान तथा उसमें लीनतारूप वीतरागता ही मोक्ष का मार्ग है; ऐसा वीतरागता ही मोक्षार्थी का कर्तव्य है, राग कहीं किंचित्मात्र कर्तव्य नहीं है। राग का एक कण भी मोक्ष को रोकनेवाला है, वह मोक्ष का साधन

कैसे हो सकता है ?—ऐसी ज्ञानी को श्रद्धा है। अहा, जहाँ पुण्यभाव को भी छोड़नेयोग्य मानते हैं। वहाँ ज्ञानी पाप में स्वच्छंदतापूर्वक कैसे वर्तेंगे ? चारित्रदशा रहित हो, तथापि सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्ग में ही है, क्योंकि उसे चारित्र की भावना है और राग की भावना नहीं है। चैतन्य को ध्येय बनाकर राग से भिन्नता की प्रतीति हुई है। ऐसी प्रतीति बिना राग से लाभ माने और प्ररूपणा करे तो वह उन्मार्ग में है, उसके ज्ञान का सारा विकास भी निरर्थक है; भगवान के मार्ग को उसने नहीं जाना है, भगवान ने किस प्रकार मोक्ष प्राप्त किया उसकी उसे खबर नहीं है। सम्यक्त्वी को अस्थिरता के कारण बाह्य विषय सम्पूर्ण न छूटें, तथापि उसका ज्ञान नहीं बिगड़ता; दृष्टि के विषय में शुद्ध चैतन्यस्वभाव को पकड़ लिया है, वह कभी छूटता नहीं है; उस स्वध्येय के आश्रय से वह सम्यक् मार्ग में वर्तता है, मोक्ष का माणिकस्तंभ उसके आत्मा में आरोपित हो गया है।

पूर्णतारूप परिनिर्वाण मंगलरूप है, और
उसके प्रारम्भरूप सम्यक्त्व भी मंगलरूप है।

इन दोनों की बात आज मांगलिक में आयी है.... इसप्रकार दीपावली का मंगलाचरण हुआ।

सम्यग्दृष्टि जीव अपने को सिद्ध परमात्मा से किंचित् भी भेदरूप (फेर न्यून) नहीं मानता।

राग काफी

आपा जाना मैं जाना ॥टेक॥ परमेसुर यह, मैं इस सेवक,
ऐसो भर्म पलाना ॥आपा० ॥१॥
जो परमेसुर सो मम मूरति, जो मम सो भगवाना।
मरमी होय सोइ तो जाने, जानै नहीं आना ॥आपा० ॥२॥
जाकौ ध्यान धरत हैं मुनिगन, पावत निरवाना।
अर्हन्त सिद्ध सूरि गुरु मुनिपद, आतमरूप बखाना ॥आपा० ॥३॥
जो निगोद में सो मुज माँही, सोई है शिवथाना।
'द्यानत' निहचैं रंच फेर नहिं सो समझे मतिवाना ॥४॥

धर्म साम्राज्यनायक-आदि तीर्थंकर

भगवान श्री ऋषभदेव

[जीवादि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का जो भव्य जीव विपरीततारहित श्रद्धान करता है, वह परब्रह्म माने मोक्ष अवस्था को प्राप्त होता है। इसप्रकार जगद्गुरु-परमपुरुष भगवान वृषभदेव से तत्त्वों का स्वरूप सुनकर भक्ति से भरे हुए और समोसरण में बैठे हुए महाराज भरत परम आनंद को प्राप्त हुए। तदनंतर परम आनंद को धारण करते हुए महाराज भरत ने भगवान ऋषभदेव से सम्यग्दर्शन की शुद्धि सह अणुव्रतों की परम विशुद्धि को प्राप्त किया। आगे क्या होता है, उसे जानने के लिए भगवान श्री जिनसेन आचार्यकृत महापुरुष के आधार से लिखी गई यह लेखमाला अवश्य पढ़िये।]

[गतांक २४३ से चालू]

जिसप्रकार शरद्ऋतु में खिला हुआ कमलों का समूह सुशोभित होता है, उसीप्रकार महाराज भरत परम भगवान वृषभदेव से प्रबुद्ध होकर तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर मन की परम विशुद्धि को प्राप्त हो अतिशय सुशोभित हो रहे थे। भरत ने गुरुदेव की आराधना कर, जिसमें सम्यग्दर्शनरूपी प्रधान मणि लगा हुआ है और जो मुक्तिरूपी लक्ष्मी के निर्मल कंठहार के समान जान पड़ती थी, ऐसी व्रत और शीलों की निर्मल माला धारण की थी। जिसप्रकार, किसी बड़ी खान से निकला हुआ मणि संस्कार के योग से देदीप्यमान होने लगता है, उसीप्रकार महाराज भरत भी गुरुदेव से ज्ञानमय संस्कार पाकर सुशोभित होने लगे थे। उसी समय सब भव्य लोग भगवान की दिव्यध्वनि सुनकर परम संतोष को प्राप्त हुए थे। उसी समय जो पुरितमाल नगर का स्वामी था, भरत का छोटा भाई था, पुण्यवान, विद्वान, शूरवीर, पवित्र, धीर स्वाभिमान करनेवालों में श्रेष्ठ, श्रीमान्, बुद्धि के पार को प्राप्त अतिशय बुद्धिमान-सम्यग्ज्ञानवंत और जितेन्द्रिय था तथा जिसका नाम वृषभसेन था, उसने भी भगवान के समीप संबोध पाकर दीक्षा धारण कर ली और उनका (ऋषभदेव भगवान का) पहला गणधर हो गया। उसी समय श्रीमान सोमप्रभ राजा श्रेयांसकुमार तथा अन्य राजा लोग भी दीक्षा लेकर भगवान के गणधर हुए थे। भरत की बहन ब्राह्मी और सुन्दरी भी वैराग्य धारकर गुरुदेव की कृपा से दीक्षित हो चुकी थी और अर्जिका और सर्वश्रेष्ठ बनी थी। उसी समय श्रुतकीर्ति पुरुष श्रावक में श्रेष्ठ और प्रियव्रता नाम की सती स्त्री, स्त्रियों में श्रेष्ठ हुई थी। भरत के भाई अनंतवीर्य ने भी सम्बोध पाकर भगवान से दीक्षा प्राप्त की थी, देवों ने भी उसकी पूजा की थी और वह इस

अवसर्पिणी युग में मोक्ष प्राप्त करने के लिये सबमें अग्रगामी हुआ था (सबसे प्रथम मोक्ष प्राप्त किया था)। इसप्रकार पवित्र बुद्धि के धारक ऐसे महाराज भरत जगद्गुरु की पूजा कर अपने नगर अयोध्या के सन्मुख हुए। पीछे-पीछे बुद्धिमान बाहुबली और भी भरत के छोटे भाई आनंद के साथ वापिस लौट रहे थे। सबने आनंद के साथ अयोध्या में प्रवेश किया।

अब समोसरण में स्थित भगवान ऋषभदेव की सौधर्म इन्द्र ने भक्तिभाव से स्तुति शुरु की। हे भगवान! आपके गुणों के द्वारा प्रेरित हुई भक्ति ही मुझे आनंदित कर रही है। इसलिये मैं संसार से उदासीन होकर भी आपकी इस स्तुति में खड़ा रहा हूँ। आपने राग-द्वेष आदि अंतरंग शत्रुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है। इसलिये आभूषण बिना का आपका शरीर अत्यंत शोभायमान हो रहा है, मुकुट, तिलक, शस्त्र आदि रहित ही आप सुंदर दिखाई देते हो और सौम्य दृष्टि सहित अच्छे हो, इसलिये मैं नमस्कार करता हूँ। एक मुख होने पर भी चारों ओर दिखाई देनेवाले हे भगवन! आपका वीतरागी वचन भव्य जीवों का जीवन है और मुखरूपी कमल धर्म के खजाने के समान सुशोभित हो रहा है। हे देव! आप मल-मूत्र, पसीना और रोग आदि विकारों से रहित हो और नेत्रों को आनन्द करनेवाली सुंदरता और मीठी मधुर वाणी से जग को हर्षित कर रहे हो। हे नाथ, जहाँ आपका समवसरण होता है, उसके चारों ओर सौ-सौ योजन तक आपके माहात्म्य से अन्न-पान आदि सब सुलभ हो जाते हैं। आपका समवसरणरूपी विमान पृथ्वी का स्पर्श नहीं करता हुआ सदा आकाश में ही विद्यमान रहता है। हे भगवन! संजीवनी औषधि के समान आपके वचन हैं। और सिंह, व्याघ्र आदि क्रूर हिंसक जीव भी दूसरे प्राणियों की कभी हिंसा नहीं करते हैं। हे प्रभो! आपके मोहनीय कर्म का क्षय हो जाने से अत्यंत सुख की उत्पत्ति हुई है, इसलिये आपके कवलाहार नहीं है, सो ठीक ही है, क्योंकि क्षुधा के क्लेश से दु:खी हुए जीव ही कवलाहार भोजन करते हैं। हे जिनेन्द्र, जो मूर्ख असातावेदनीय कर्म का उदय होने से आपको भी कवलाहार की योजना करते हैं अर्थात् यह कहते हैं कि आप भी कवलाहार (रोटी-दाल-चावल आदि का कवल) करते हैं तो उन्हें मोहरूपी वायु रोग लगा है, सो दूर करने के लिए पुराने घी की खोज करनी चाहिये अर्थात् पुराने घी के लगाने से जैसे सन्निपात शांत हो जाता है, उसी तरह उसे अपने मोह को दूर करने के लिए किसी पुराने अनुभवी (सम्यग्दृष्टि) पुरुष का स्नेह प्राप्त करना होगा।

हे देव! मंत्र की शक्ति से जिसका बल नष्ट हो गया है, ऐसा विष जिसप्रकार कुछ भी नहीं कर सकता है, उसीप्रकार घातियाकर्मों के नष्ट हो जाने से जिसकी शक्ति नष्ट हो गई है, ऐसा असाता

–वेदनीयरूपी विष आपके विषय में कुछ भी नहीं कर सकता। हे नाथ! घातिया कर्मरूपी सहकारी कारणों का अभाव हो जाने से असातावेदनीय का उदय आपके विषय में अकिंचित्कर है अर्थात् कुछ नहीं कर सकता। हे नाथ! आप ईति, भीति और उपसर्ग से रहित हैं। आप केवलज्ञान आदि अनंत चतुष्टय से सहित हो और छाया और नेत्र टिमकार रहित परम औदारिक शरीर को धारण कर रहे हो। ऐसे–ऐसे अनेक गुण जो दूसरी जगह न पाये जाते हैं, वे सब आपके पास ही आ गए हैं। जिनकी प्राप्ति के लिए इन्द्र आदि इच्छा करते हैं, ऐसे रूप–सौंदर्य कांति और दीप्ति आदि गुण आपके लिये हेय हैं—छोड़ने योग्य हैं। हे प्रभो, अन्य सब गुणरूपी बंधनों को छोड़कर केवल आपकी उपासना करनेवाले गुणी पुरुष आपके सदृश्य हो जाते हैं, सो ठीक ही है क्योंकि स्वामी के अनुसार चलना ही शिष्यों का कर्तव्य है। हे नाथ! आप अपने आत्मा में अपने आत्मा के द्वारा अपने आत्मा को उत्पन्न कर प्रकट हुए हैं, इसलिए आप स्वयंभू हैं अर्थात् अपने आप उत्पन्न हुए कहलाते है। इसके सिवाय आपका माहात्म्य भी अचिंत्य है। अतः आपको नमस्कार हो। हे नाथ! आप स्वर्गावतरण के समय (गर्भकल्याणक) सद्योजात अर्थात् शीघ्र ही उत्पन्न होनेवाले कहलाये थे। इसलिये आपको नमस्कार हो, आप जन्माभिषेक के समय बहुत सुन्दर जान पड़ते थे, इसलिये हे नाथ! आपके लिये नमस्कार हो। दीक्ष कल्याणक के समय आप परम शांति को प्राप्त हुए और केवलज्ञान के प्राप्त होने पर परम पद को प्राप्त हुए तथा ईश्वर कहलाये, इसलिये आपको नमस्कार हो। अब आगे शुद्ध आत्मस्वरूप के द्वारा मोक्षस्थान को प्राप्त होंगे, इसलिये आगामी काल में प्राप्त होनेवाली सिद्ध अवस्था को धारण करनेवाले आपके लिए मेरा आज ही नमस्कार हो। अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, क्षायिक सम्यग्दर्शन (अनंत सुख) अनंत वीर्य (क्षायिक) अनंत दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग और क्षायिक उपभोग आदि अनंत गुण के धारण करनेवाले हे भगवन्! आपको नमस्कार हो। हे भगवन्! आपके गुणों का स्तवन तो दूर रहे क्योंकि आपके अनंत गुण हैं, उन सबका स्तवन होना कठिन है, इसलिये केवल आपके नामों का स्मरण कर ही हम लोग आपकी उपासना करना चाहते हैं। आपके दैदीप्यमान एक हजार आठ लक्षण अतिशय प्रसिद्ध हैं और आप समस्त वाणियों के स्वामी हैं, इसलिये हम लोग अपनी अभिष्ट सिद्धि के लिए एक हजार आठ नामों से आपकी स्तुति करते हैं। आप अनंत चतुष्टयरूप अंतरंग लक्ष्मी और अष्ट प्रातिहार्यरूप बहिरंग लक्ष्मी से सहित हैं। इसलिये श्रीमान कहलाते हैं। (१००८ नामों के लिए श्री महापुराण–सर्ग–२५ देखिये) धर्मरूपी साम्राज्य के स्वामी होने से धर्म साम्राज्यनायक कहलाते हैं। इसप्रकार

इंद्र ने चर और अचर जगत के गुरु भगवान वृषभदेव की स्तुति करने के बाद तीर्थ विहार के लिए नीचे लिखी हुई प्रार्थना की। हे भगवन्! भव्य जीवरूपी धान्य पापरूपी अनावृष्टि से सूख रहे हैं, सो हे विभो! उन्हें धर्मरूपी अमृत से सींचकर उनके लिए आप ही शरण होइये।

तीनों जगत के स्वामी और धर्म के अधिपति हैं ऐसे श्रीमान् आदि पुरुष भगवान वृषभदेव ने विजय करने का उद्योग किया—विहार करना प्रारंभ किया। सूर्य के समान इच्छारहित वृत्ति को धारण करनेवाले भगवान ने प्रस्थान किया। आकाशरूपी आँगन में सुवर्णमय कमलों की पंक्ति को इन्द्र की आज्ञा से देवलोक बना रहे थे और भगवान उन पर पैर रखकर प्रस्थान कर रहे थे। इसप्रकार समस्त जगत के स्वामी भगवान वृषभदेव ने जगत को आनंदमय करते हुए तथा अपने वचनरूपी अमृत से सबको संतुष्ट करते हुए समस्त पृथ्वी पर विहार किया था। समीचीन मार्ग के उपदेश देने में तत्पर तथा धीर-वीर भगवान ने काशी, अवंति, कुरु, कौशल, सुह्म, पुण्डे, चेदि, अंग, वंग, मगध, आंध्र, कलिंग, मद्र, पंचाल, मालव, दशार्ण और विदर्भ आदि देशों में विहार किया था। इसप्रकार जिनका चरित्र अत्यंत शांत है। जिन्होंने अनेक भव्य जीवों को तत्त्वज्ञान प्राप्त कराया है और जो तीनों लोकों के गुरु हैं, ऐसे भगवान वृषभदेव अनेक देशों में विहारकर चंद्रमा के समान उज्ज्वल, ऊँचे और अपना अनुकरण करनेवाले कैलाशपर्वत को प्राप्त हुए। वहाँ उसके अग्रभाग पर देवों के द्वारा बनाये हुए, सुंदर और शोभा बढ़ानेवाले सभा मंडप में विराजमान हुए। उस समय वे जिनेन्द्रदेव अनंत चतुष्टरूप लक्ष्मी से सहित थे, आदर के साथ भक्ति से नम्रीभूत हुए बारह सभा के लोगों से घिरे हुए थे और उत्तमोत्तम आठ प्रातिहार्यों से सुशोभित हो रहे थे। जिनके चरणकमल इन्द्रों के द्वारा पूजित हैं। घातियाकर्मों का क्षय होने के बाद जिन्हें अनंत चतुष्टयरूपी विभूति प्राप्त हुई है, जो भव्यजीवरूपी कमलिनियों को विकसित करने के लिए सूर्य के समान हैं, जिनके मानस्तंभों के देखने मात्र से जगत के अच्छे-अच्छे पुरुष नम्रीभूत हो जाते हैं, जो तीनों लोकों के स्वामी हैं, जिन्हें अचिंत्य बहिरंग विभूति प्राप्त हुई है, और जो पाप रहित हैं, ऐसे श्री स्वामी (ऋषभदेव को) जिनेन्द्रदेव को हम लोग भी भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं। (क्रमशः)

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—सूत्रजी अध्याय १, सूत्र २ 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' यह लक्षण निश्चय सम्यग्दर्शन का है या व्यवहार सम्यग्दर्शन का है ? और निश्चय सम्यग्दर्शन कौन से गुणस्थान से होता है।

उत्तर—वह लक्षण निश्चय सम्यग्दर्शन का है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत प्रवचनसार गाथा २१६ की टीका में कहा है कि ....जो तत्त्वार्थ श्रद्धानवाली दृष्टि से शून्य है, वह सभी को संयम ही प्रथम तो नहीं होता।'

समयसार, गाथा ३५६ से ३५९ श्री जयसेनाचार्य टीका में उसे निश्चय सम्यग्दर्शन कहा है 'श्वेतमृतिका के दृष्टांत से पर का अर्थात् जीवादि पदार्थों का श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन नहीं होता अर्थात् निश्चयनय से जीव उनका श्रद्धान करनेवाला नहीं होता अर्थात् पर पदार्थों के श्रद्धान में तन्मय नहीं होता तो फिर क्या होता है कि सम्यग्दर्शनस्वरूप आत्मा सम्यग्दर्शनस्वरूप ही रहता है। इसतरह तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षण सम्यग्दर्शन की मुख्यता से गाथा हुई।'

मोक्षमार्गप्रकाशक, अध्याय ९ जहाँ पर तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षण में व्याप्ति बताकर अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असंभव दोष का परिहार किया है, वहाँ प्रथम कहा है ....'इसलिये जिस तत्त्वार्थ श्रद्धान विपरीताभिनिवेश रहित है, वही सम्यग्दर्शन है। उसप्रकार विपरीताभिनिवेश रहित जीवादि तत्त्वों का श्रद्धान, वही सम्यग्दर्शन है। श्री अमृतचंद्राचार्यकृत पुरुषार्थसिद्धिउपाय में भी यही कहा है—

जीवाजीवादिनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्तव्यम्।
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेश विवक्तमात्मरूपंतत्॥२२॥

अर्थ—विपरीताभिनिवेश से रहित जीव-अजीवादि तत्त्वार्थों का श्रद्धान सदाकाल करने योग्य है, वह श्रद्धान आत्मा का ही स्वरूप है, कारण कि दर्शनमोहरूप उपाधि दूर होते प्रगट होता है। इसलिये वह आत्मा का स्वभाव है। चतुर्थ गुणस्थान में प्रगट होता है और बाद में सिद्ध अवस्था में भी सदाकाल उसका सद्भाव रहता है - ऐसा जानना। बाद उन्होंने तिर्यंचादि तुच्छ ज्ञानी सम्यग्दृष्टियों से लेकर सिद्ध परमात्मा तक उस तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षणवाला सम्यग्दर्शन निर्बाधरूप से सिद्ध किया है। जो कोई निश्चय सम्यग्दर्शन सातवें या आठवें गुणस्थान से ही मानते हैं या शुक्लध्यान की श्रेणी में या १३वें में मानते हैं, वह एकान्त है, इसलिये गलत है।

प्रश्न—निश्चयसम्यग्दर्शन तो श्रेणी में ही होय। आठवें गुणस्थान से होता है, ऐसा मानने में क्या दोष आता है ?

उत्तर—मिथ्यात्व का दोष आता है। क्योंकि—मिथ्यात्व का बड़ा आस्रव नहीं रुकने से अविरति, प्रमाद, कषाय और योग में से एक भी बंध के कारण का निरोध इस काल में किसी को नहीं होगा अर्थात् इस भरतक्षेत्र में इस काल में शुक्लध्यान तो किसी को नहीं है। इसलिये सबको पराश्रित व्यवहार लक्षणवाले महाव्रत, समिति, पूजा, दानादिरूप शुभराग—पुण्यास्रव ही धर्म के नाम पर करने का रहा, तो बिना निश्चय अकेला व्यवहार को 'अनादिरूढ़ व्यवहार विमूढ़, प्रौढ़ विवेकवाले निश्चय में अनारूढ़ कहा है' ऐसा व्यवहार का पक्ष तो जीव को अज्ञानवश अनादिकाल से है ही। अत: प्रथम व्यवहार और पश्चात् निश्चय मानना मिथ्यामत है। जो अनादि का व्यवहार को सर्वज्ञ के मार्ग में प्रथम मानना और आंशिक भी निश्चय धर्मरहित अकेले व्यवहार रत्नत्रय के ही द्वारा पाँचवाँ गुणस्थान की गुण श्रेणी निर्जरा बताना, उस शुभराग के द्वारा ही ४-५-६-७-८-९-१०वें गुणस्थान की प्राप्ति बताना; आंशिक भी स्वाश्रित निश्चयधर्म के द्वारा उस गुणस्थान या मोक्षमार्ग न मानना, यह बात आगमज्ञान से विपरीत ही है। शास्त्र के कथन का अर्थ नयार्थ के अनुसार न करके अपनी दृष्टि अनुसार करके दूसरे के सत्य अर्थ को (आगमानुसार कथन को) झूठ ठहराना ठीक नहीं है।

यदि व्यवहार के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता हो तो समयसार गाथा ११ जो जिनशासन का प्राण है, उसमें भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा क्यों कहा ? और व्यवहार का पक्ष अनादि का है, ऐसा क्यों कहा ? अत: व्यवहारनय जानने योग्य है किंतु अभूतार्थदर्शी होने से आश्रय करने योग्य नहीं है, इस अपेक्षा से अभूतार्थ है। इसलिये त्रैकालिकज्ञायक के आश्रय द्वारा श्रद्धा में प्रथम से ही व्यवहार का आश्रय छोड़ने योग्य है, ऐसा आचार्यों ने कहा है।

दोनों नय हैं किंतु परस्पर विरुद्ध लक्षण सहित होने से कभी समकक्ष नहीं हैं।

क्या व्यवहार रत्नत्रय सच्चा मोक्षमार्ग है!

श्री पंडित गेंदालाल शास्त्री, बूँदी

(गतांक २४४ से आगे)

पहले यह अच्छी तरह सिद्ध किया जा चुका है कि वास्तव में जो आत्मा में एकरूपता से तन्मय हो सके, ऐसा निश्चयरत्नत्रय ही उससे अभिन्न साधन होने से सच्चा मोक्षमार्ग है। व्यवहार-रत्नत्रय आस्रव-बन्ध के कारण होने से वास्तव में शुद्ध आत्मपरिणतिरूप मोक्षमार्ग के विरोधी ही हैं, लेकिन तत्तद्भूमिकाओं में इनकी (व्यवहार-राग-रूप रत्नत्रय की) सहचरता अवश्य होती है। इसलिये ये भी मोक्षमार्ग कहलाने लग जाते हैं, जो कि केवल उपचार मात्र ही से है।

कोई कहते हैं कि धवला में श्री वीरसेन स्वामी ने लिखा है कि 'व्यवहारनय का गणधरदेव भी आश्रय लेते हैं' जिस व्यवहार का गणधरदेव भी आश्रय लें, वह हेय कैसे हो सकता है? वह तो निश्चित रूप से उपादेय है। सो यह कुतर्क भी ऐसा ही है कि जैसे किसी बड़े सेठ या राजा को कोई रोग हो जाये और वह कड़वी दवा को प्रसन्नतापूर्वक सेवन करें तो कोई अज्ञानी कहे यदि दवा सेवन करना हेय है (अच्छा नहीं है) तो अमुक सेठ या राजा साहब उस दवा का सेवन क्यों करते हैं?' लेकिन ये विद्वान यह भूल जाते हैं कि वास्तव में कोई भी सेठ या राजा साहब तो क्या छोटे से छोटा मनुष्य भी दवा सेवन को उपादेय नहीं मानता है, यदि दवा सेवन उपादेय हो तो रोग नष्ट हो जाने पर भी दवा सेवन करते ही रहना चाहिये, लेकिन सब यही भावना रखते हैं कि इस दवा से हमारा कब पिण्ड छूटे। श्री अमृतचंद्रस्वामी ने लिखा है कि 'व्यवहारनयः स्याद्यद्यपिप्राक् पदव्या, मिह निहितपदानां हन्त हस्तावलम्ब' अर्थात् जिन्होंने मोक्षमार्ग में पैर रखा है, उन आत्मस्वरूप में पूर्ण रूप से स्थिर होने में असमर्थ जीवों के व्यवहारनय हस्तावलम्बन रूप होता जरूर है, इसका हमको उल्लास नहीं, बल्कि हन्त / खेद है। यहाँ आचार्यदेव हन्त शब्द द्वारा व्यवहार का अवलम्बन होने पर खेद-आश्चर्य प्रगट करके उसे हेय स्पष्ट साबित कर रहे हैं। इससे सिद्ध हुआ कि गणधरदेव जब सातवें गुणस्थान में आत्मस्वरूप में स्थिर होते हैं, तब तो इस मान्यता वालों का व्यवहार वहाँ अत्यंत गौण हो जाता है, लेकिन सातवें गुणस्थान योग्य आत्मशुद्धि को निरंतर ही प्राप्त करते रहें और वहाँ से गिरके अंतर्मुहूर्त बाद छठे गुणस्थान में नहीं आवे, ऐसा होना असंभव है, तब छठे गुणस्थान के योग्य शुद्ध आहार ग्रहण, केश लोंच, द्वादशांग रूप शास्त्रों का अध्ययन आदि रूप

व्यवहार का अवलंबन अवश्य होता है। सो यदि यह व्यवहार वास्तव में उपादेय हो तो वे गणधरदेव उस छठी भूमिका के उपादेयरूप व्यवहार को छोड़कर फिर अंतर्मुहूर्त पश्चात् सातवें में क्यों चले जाते हैं ? क्या उपादेय भी छोड़ा जाता है ? वास्तव में धवला में श्री वीरसेन आचार्यदेव का भी 'व्यवहार में आत्मस्थिरता की असमर्थता से गणधरदेव ठहरते हैं', उसको उपादेय कहने का यही अभिप्राय है, वास्तव में तो सातवीं भूमिका से छठी भूमिका के बुद्धिपूर्वक राग का श्री गणधरदेव को तो क्या एक अविरत सम्यग्दृष्टि को भी बड़ा खेद ही होता है। मात्र शास्त्र के शब्दार्थ को उद्धृत करके उसके भावों की तरफ बिल्कुल आँख बन्द कर लेना उचित नहीं है। शास्त्रों में बड़े-बड़े आचार्यों ने जिनेन्द्र स्तवन में लिखा है 'तुभ्यं नमस्त्रि भुवनार्तिहराय नाथ।' हे नाथ आप तीन भुवन की पीड़ा को हरण करनेवाले हो, अतः आपको नमस्कार हो। यहाँ क्या मानतुंगस्वामी का भक्तामर में यह अभिप्राय था कि श्री आदिनाथ भगवान तीन लोक के जीवों की पीड़ा स्वयं दूर करते हैं ? नहीं; वीतराग भगवान को कभी किसी जीव की पीड़ा हरण करने का राग नहीं हो सकता है। यदि वे पीड़ा दूर करने का राग करने लगे तो तीनों लोकों के सर्व जीवों को अपने अनंत बल के द्वारा मोक्ष में पहुँचा देवे। लेकिन शब्दार्थ के साथ में भावार्थ भी देखना चाहिये।

भगवान कुन्दकुन्द समयसार में लिखते हैं 'मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण बिदुसा पवट्टंति। परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओविहिओ॥१५६॥ इस गाथा की टीका में श्री अमृतचंद्रस्वामी कैसा अनुपम अमृत पिला रहे हैं, उस टीका का अंग यह है।

'यः खलु परमार्थ मोक्षहेतोरतिरिक्तो व्रत तपः प्रभृति शुभकर्मात्मा केषांचिन्मोक्ष हेतुः स सर्वोऽपि प्रतिषिद्धस्तस्य द्रव्यान्तरस्वभावत्वात् तत्स्वभावेन ज्ञान भवनस्याभवनात्। परमार्थ मोक्ष हेतोरेवैक द्रव्यस्वभावत्वात् तत्स्वभावेन ज्ञान भवनस्य भवनात्॥'

अर्थात् कुछ लोग परमार्थ मोक्ष हेतु से भिन्न व्रत-तप इष्त्यादि शुभकर्म स्वरूप मोक्ष हेतु मानते हैं, उस समस्त ही का (इस गाथा में) निषेध किया गया है, क्योंकि वह (मोक्ष हेतु) अन्य द्रव्य के स्वभाववाला (पुद्गल स्वभाववाला) है, इसलिये उसके स्वभाव से ज्ञान का भवन (होना) नहीं बनता—मात्र परमार्थ मोक्ष हेतु ही एक द्रव्य के स्वभाववाला (जीव स्वभाववाला) है, इसलिये उसके स्वभाव के द्वारा ज्ञान का भवन बनता है। कोरे व्रत, तप के पक्षपाती लोगों के लिये आचार्यदेव ने कितना विशद स्पष्टीकरण इस टीका में किया है। टीका के शब्दों का तात्पर्य यह है कि निश्चय सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र ये आत्मद्रव्य के ज्ञानस्वभाव से अभिन्न तादात्म्य रखते हैं।

अत: एक द्रव्यरूप (आत्मा के स्वभावभूत) होने से ये ही सच्चे यथार्थ मोक्षमार्ग हैं। इनके (निश्चय रत्नत्रय के) अतिरिक्त जो रागरूप व्रत, तप आदि व्यवहार है, वह सब ज्ञानस्वरूप आत्मद्रव्य से भिन्न पुद्गलस्वभावी होने से सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है। इसी विषय का श्री अमृतचन्द्रस्वामी थोड़ा सा और अमृत पिलाते हैं। जरा प्रेम से पीजिये और व्यवहाराभास के विष को वमन कीजिये।

वृत्तं ज्ञान स्वभावेन ज्ञानस्य भवनं सदा।
एकद्रव्य स्वभावत्वान्मोक्ष हेतुस्तदेव तत्॥१०६॥

(कलश समयसार)

अर्थात् एक द्रव्यस्वभावी जीव से अभिन्न होने से ज्ञान के स्वभाव से सदा ज्ञान का भवन (शुद्धात्मरूप परिणमन) होता है, इसलिये ज्ञान ही मोक्ष का कारण है। व्यवहाररत्नत्रय के लिये ये ही आचार्यदेव क्या लिखते हैं ?

वृत्तं कर्म स्वभावेन ज्ञानस्य भवनं नहि।
द्रव्यांतर स्वभावत्वान्मोक्ष हेतुर्न कर्म तत्॥१०७॥

(कलश समयसार)

(व्रत तपादि) कर्म अन्य द्रव्यस्वभावी (पुद्गल स्वभावी) होने से कर्म के स्वभाव से (शुभरागरूप प्रवृत्ति से) ज्ञान का भवन नहीं बनता, इसलिये शुभाशुभ कर्मरूप व्यवहार, मोक्ष का कारण नहीं है।

श्री गणधर भगवान को रागरूप व्यवहार का आश्रय करानेवाले महाशय, भगवान अमृतचन्द्र के उपदेश के मर्म को हृदयंगम करने का कष्ट करें, क्योंकि यदि व्यवहाररत्नत्रय वास्तव में उपादेय होता तो आचार्यदेव उसको म्लेच्छ भाषा के स्थान पर नहीं रखते और 'मुमुक्षुणा म्लेच्छभाषा स्थानीयो व्यवहार नयो नानुसर्तव्य:।' और भी 'अथ च ब्राह्मणो न म्लेच्छितव्य इति वचनात् व्यवहार नयो नानुसर्तव्य:।' समयसार टीका गाथा ८ इत्यादि सूक्तियों से सिद्ध है कि यद्यपि निश्चय मोक्षमार्ग पर चलनेवाले मुमुक्षु को बीच में व्यवहाररत्नत्रय का राग यथा पदवी अवश्य आता है लेकिन वह वास्तविक मोक्षमार्ग नहीं है, क्योंकि वह रागरूप सच्चे देव शास्त्र-गुरु का श्रद्धानरूप व्यवहार सम्यग्दर्शन, अंग पूर्व का रागरूप ज्ञान और षट्काय जीव की रक्षारूप व्यवहार -चारित्र ये सब जीव के ज्ञानस्वभाव से भिन्न आस्रव-बन्धरूप होने से वास्तविक मोक्षमार्ग नहीं हो सकते हैं। अत: जो धीमान् ऐसा कहते हैं कि निश्चय सम्यग्दर्शनरूप मोक्षमार्ग क्षीणकषायी मुनि

को तथा केवली भगवान को ही होता है, नीचले गुणस्थानों में तो केवल व्यवहार सम्यग्दर्शनादि ही होते हैं, वे वीतराग वाणी के कितने विरुद्ध हैं, यह आप उपरोक्त आचार्यदेव की देशना से स्पष्ट जान सकते हैं।

कितने आश्चर्य की बात है कि गुणश्रेणी निर्जरा ४-५ गुणस्थान से प्रारम्भ हो जाये और ज्ञान का भवन (आत्मस्वभावरूप परिणमन) अंशमात्र भी नहीं, केवल व्यवहार से ही क्षपकश्रेणी चढ़ जाये और व्यवहार से ही केवलज्ञान प्राप्त कर ले। एक तरफ तो हमारे विद्वान लिखते हैं कि क्षायिक सम्यग्दर्शन चतुर्थादि गुणस्थानों में और क्षायिक चारित्र बारहवें क्षीणकषाय गुणस्थान में तथा क्षायिक केवलज्ञान तेरहवें गुणस्थान में अपने-अपने प्रतिपक्षी कर्मों के सर्वथा अभाव में होते हैं, सो पूर्ण ही होते हैं, और जब निश्चय रत्नत्रय की बात आती है, तब चौथे गुणस्थान के क्षायिक सम्यग्दर्शन को भी व्यवहार कह देते हैं और निश्चय सम्यक्त्व को तेरहवें गुणस्थान में बतलाने का साहस करते हैं। इनसे पूछा जाये, तब चतुर्थ गुणस्थान में दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीय के अनंतानुबंधी का सर्वथा अभाव हो गया, फिर श्रद्धागुण की निर्मल परिणतिरूप निश्चय सम्यग्दर्शन को कौन रोक रहा है? यदि सात प्रकृति के क्षय से भी निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता तो फिर वैसे ही बारहवें गुणस्थान में अशेष चारित्रमोहनीय के क्षय से भी सिर्फ व्यवहारचारित्र ही होना चाहिए, फिर यथाख्यातचारित्र को ग्यारहवें से सिद्ध तक एकरूप कहनेवाले महाशय क्या सिद्धों में भी व्यवहारचारित्र मानेंगे? यदि नहीं तो क्यों? इसीप्रकार तेरहवें गुणस्थान में क्षायिक ज्ञान को भी क्या व्यवहार ज्ञान ही कहेंगे या निश्चय? यदि कर्मों के सर्वथा अभाव से होनेवाले ज्ञान-चारित्र को परिपूर्ण तथा निश्चय ज्ञान-चारित्र कहेंगे तो फिर सप्त प्रकृतियों के क्षय से क्षायिक सम्यग्दर्शन को निश्चय कह देने में कौन सा गजब हो जायेगा। भगवान अकलंकदेव सदृश प्रकाण्ड तार्किक विद्वान क्षायिक सम्यग्दर्शन को वीतराग (निश्चय) सम्यग्दर्शन कहने में नहीं सकुचाते हैं। अमितगति आचार्य अपने श्रावकाचार में सप्त प्रकृति के क्षय से होनेवाले सम्यक्त्व को डंके की चोट वीतराग कहते हैं, लेकिन फिर भी निश्चय सम्यग्दर्शन को तेरहवें गुणस्थान में बतलाना गजब का साहस नहीं तो क्या है? पुरुषार्थसिद्धयुपाय एक चरणानुयोग का श्रावकाचार का विषयक मान्य ग्रन्थ है, उसमें आचार्यदेव सम्यग्दर्शन के लिये लिखते हैं कि 'विपरीताभिनिवेश रहित यह जीवादि पदार्थों का श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन जो कि आत्मा का ही स्वरूप है 'आत्मरूपं तत्' अर्थात् निजाश्रित होने से निश्चय सम्यग्दर्शन है, इसे सदैव ही धारण करना चाहिये। अब जरा सोचिये, यह आत्मा का

स्वरूप सम्यग्दर्शन श्रावकों को धारण करने के लिये ही आचार्यदेव कह रहे हैं या केवली प्रभु को उपदेश दे रहे हैं। इसी ग्रन्थ में प्रभावना अंग में लिखा है कि 'आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रय तेजसा सततमेव।' अर्थात् निश्चय रत्नत्रय के तेज से अपने आत्मा की प्रभावना करनी चाहिए।

यह उपदेश भी निश्चय आत्माश्रित है, सो क्या केवली भगवान के लिये दिया है, या श्रावक आदि निचली भूमिकावालों के लिये है।

प्रायः यह सर्व विदित है कि समयसार आदि परमागमों में भी डंके की चोट यह प्रतिपादन किया गया है कि निश्चयनय प्रतिषेधक है और व्यवहारनय प्रतिषेध्य (निषेध करनेयोग्य) है; जैसे समयसार में निश्चयनय कहता है कि आत्मा अबद्ध अस्पृष्ट है, नियत है, अनन्य है, अविशेष है और असंयुक्त है लेकिन व्यवहारनय आत्मा को पर (कर्मादि) के संयोग के कारण बद्धस्पृष्ट, अनियत, अन्य, विशेष और संयुक्त मानता है। अब निश्चयनय आत्मा को अखंड ज्ञानरूप कहता है तो व्यवहार उससे विपरीत मनुष्यादि पर्याय को जीव की कहता है। यद्यपि दोनों नयों की ये दो दृष्टियाँ अपने-अपने रूप से पूर्ण सत्य हैं, अतः शास्त्रों में लिखा है कि जिस दृष्टि से देखो वस्तु उस रूप अवश्य है, यह बात कल्पित नहीं है।

जैये दूल्हा का संबंध दुल्हन से होने के कारण दुल्हा-दुल्हन झूठे नहीं हैं, अवश्य हैं और न इनका यह संबंध ही झूठा है, लेकिन जब दुल्हा के स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का विचार करें तो दुल्हा का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव दुल्हन के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अत्यन्त भिन्न है। अर्थात् जब दुल्हा बीमार हो जाये तो दुल्हन भी बीमार होना ही चाहिये और दुल्हन मर जाये तो दूल्हा को मर ही जाना चाहिये, ऐसी बात नहीं है। ऐसे ही मनुष्य शरीर जो पुद्गलरूप है और जीव जो ज्ञानदर्शन स्वरूप है, दोनों की पर्यायों का कुछ क्षण सहचर संबंध अवश्य है, लेकिन इससे जीव और शरीर दोनों के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव एक कभी नहीं हो सकते। व्यवहार जिस दृष्टि से मनुष्यादि शरीर को आत्मा कहता है, और निश्चय जिस दृष्टि से उसका निषेध करता है, उसे जानना अवश्य चाहिये। जानने के लिये तो सम्पूर्ण लोकालोक हैं और अनादि से छह द्रव्यों का परस्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध भी अनादि से अनंत काल तक चलते ही रहेंगे, इनको कौन रोक सकता है? लेकिन जीव का प्रयोजन जो निराकुल सुख है, उसकी प्राप्ति क्या लोकालोक का आश्रय करने से होगी या निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध की ओर ही देखते रहने से होगी, विचार करें।

स्वामी अमृतचंद्र कलश ६ समयसार में लिखते हैं, पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः

पृथक्। अर्थात् समस्त परद्रव्यों से पृथक् ज्ञानपिंड आत्मा का दर्शन (श्रद्धान) ही सम्यग्दर्शन है। सारांश परद्रव्यों से अत्यंत भिन्न ज्ञानपिंड आत्मा की श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है और उसी में स्थिर रहना सम्यक्चारित्र है। सम्यग्दर्शन और ज्ञान-चारित्र ये आत्मा की ही निर्मल पर्यायें हैं, इनको प्राप्त करने के लिये दूसरे द्रव्यों के संग्रह की बुद्धि करना अज्ञान है। थोड़ा सा विचार किया जाता है कि—निश्चय से आत्मा, परमपारिणामिक ज्ञायकभावरूप अखंड द्रव्य है और व्यवहार से मनुष्य पशु, देव आदि तथा एकेन्द्री, दोइन्द्री, पंचेन्द्री आदि तथा स्थावर त्रस आदि के भेदरूप है। दोनों दृष्टियाँ अपनी-अपनी अपेक्षा से पूर्ण सत्य हैं लेकिन मनुष्यादि तथा पंचेन्द्रियादि पुद्गल पर्यायों का आश्रय जो कि इस अज्ञानी जीवों ने अनादि काल से ले रखा है और शास्त्र पढ़कर फिर भी यह इस अनादिरूढ़ व्यवहार का ही आश्रय लेगा, तो क्या इस व्यवहार के आश्रय से इसको निराकुल आत्मसुख की प्राप्ति हो जायेगी? या निश्चय द्वारा प्रदर्शित ज्ञानपिण्ड आत्मद्रव्य का आश्रय लेने से मोक्ष की प्राप्ति होगी। जरा आचार्यदेव के भाव को समझने के लिये पक्षपात छोड़कर मनन करना चाहिये। प्रत्येक मुमुक्षु को किसी भी तरह अर्थात् मरकर भी तत्त्व का कौतुहली बनना चाहिये। यही आचार्यदेव का करुणापूर्ण उपदेश है।

हमारे बन्धु व्यवहार उपादेय है, व्यवहार उपादेय है, इसप्रकार का हो हल्ला करते तो हैं, उनसे प्रेमपूर्वक पूछा जाये कि भाई! व्यवहार से शरीर और जीव एक है, ऐसा समयसार में लिखा है, सो आत्मा और शरीर दोनों एक है तो फिर शरीर का आश्रय क्यों नहीं लेते? जैसे जीव का आश्रय लेते हो, वैसे ही शरीर का भी लो। फिर अशुचि भावना में शरीर की निन्दा करके अनित्यादि भावना में शरीर के दुर्गुण क्यों विचारते हो, उसको व्यवहाररूप शरीर को उपादेय भी कहते जाते हो और उसकी भावनाओं में निन्दा भी करते जाते हो, यहाँ तक कि उस मोक्ष ले जानेवाले शरीर को अनशनादि तथा काय क्लेशादि तपों के द्वारा क्षीण भी बनाते जाते हो? ये क्या दुरंगी चालें नहीं हैं? आत्मा और शरीर को एक बतलाने वाले व्यवहारनय को जैसे शिरोधार्य करते हो, उपादेय बतलाते हो, वैसे ही उसके द्वारा बतलाये हुए शरीर से फिर क्यों उपेक्षा धारण करते हो। उसको भी उपादेय मानकर खूब खिला-पिलाकर उस आत्मरूप शरीर का आश्रय करना चाहिये। हमारे भाईयों को कितना सुंदर अनेकांत है। कथंचित् आत्मा का आश्रय करना चाहिये और कथंचित् शरीर का आश्रय करना चाहिये। कथंचित् आत्मा की परिणति मोक्षमार्ग है और कथंचित् शरीर की परिणति मोक्षमार्ग है। कथंचित् आत्मा मोक्ष में जाता है और कथंचित् शरीर मोक्ष में जाता है। कहाँ तक

लिखा जाये, हमारे विद्वान कैसा कैसा अनेकांत मान रहे हैं। अनेकांत को आचार्यों ने **प्रत्येक द्रव्य को स्वचतुष्टय की अपेक्षा सर्वथा अस्तिरूप बतलाया है और पर चतुष्टय की अपेक्षा सर्वथा नास्तिरूप ही बतलाया है।** ऐसा नहीं कि कथंचित् स्वचतुष्टय से अस्तिरूप है और कथंचित् स्वचतुष्टय से ही नास्तिरूप है। पर चतुष्टय से नास्तिरूप ही है, ऐसा नहीं कि कथंचित् परचतुष्टय से भी अस्तिरूप हो। —क्रमशः

धर्मात्मा का उत्कृष्ट पराक्रम आनन्दाश्चर्य उत्पन्न करता है।

'जिन्हें कुछ प्रिय नहीं है, कुछ अप्रिय नहीं है; जिनका कोई शत्रु नहीं है, कोई मित्र नहीं है; जिनके मान, अपमान, लाभ, अलाभ, हर्ष, शोक, जन्म, मृत्यु आदि द्वंद्व का अभाव होकर जो शुद्ध चैतन्यस्वरूप में स्थिति को प्राप्त हुए हैं, प्राप्त होते हैं और प्राप्त होंगे उनका अति उत्कृष्ट पराक्रम सानन्दाश्चर्य उत्पन्न करता है।' —श्रीमद् राजचंद्र : (८३३)

निवेदन—

पुस्तकें मंगवाने वालों से प्रार्थना है कि—अपने पते में, मुकाम, पोस्ट, जिला, स्टेशन, प्रांत स्पष्ट साफ अक्षरों में लिखा करें। रेल पार्सल या डाक पार्सल जैसे मंगाना हो लिखा करें।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

धर्मप्रभावना के समाचार

इस साल दस लक्षण पर्यूषण पर्व में विद्वान उपदेशकों के लिये अनेक गाँवों से माँग आई थी किंतु २६ जगह विद्वानगण पहुँच सके।

(१) इंदौर (मध्यप्रदेश)—समस्त दि० जैन समाज की ओर से पंडित श्री फूलचंदजी सिद्धांत शास्त्री वाराणसी को आमंत्रण था। तारीख २९-८-६५ को समाज के गणमान्य तथा प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा उनका भव्य स्वागत किया गया। समाज के आग्रह से तारीख ३० को मल्हारगंज मंदिर में आपका शास्त्र प्रवचन था, भाद्र शुक्ल ५ से पंडितजी का प्रोग्राम पर्यूषण समारोह कमेटी के द्वारा अन्य कार्यक्रमों के साथ घोषित किया गया।

प्रतिदिन प्रातः शंका समाधान दि० मारवाड़ी मंदिर सक्कर बाजार; दोपहर को दो घंटे तक सूत्रजी का प्रवचन, रात्रि को पंडितजी का शास्त्र प्रवचन जिसमें आधे घंटे सागार धर्मामृत तथा आधे घंटे प्रत्येक दिन एक-एक उत्तम क्षमादि धर्म पर विवेचन होता था। रात्रि की सभा में विशेष दिलचस्पी रहती थी- यहाँ तक कि अजैन लोग भी रुचि लेते थे। पूरा पंडाल तथा आसपास की जगह भर जाती थी, अंदाजन ७-८ हजार के करीब उपस्थिति हो जाती थी, सभा में प्रश्नोत्तर भी होते थे, उनको हल करने की उनकी प्रतिभा विलक्षण होने के कारण सुंदर ढंग से निराकरण हो जाता था। — जे० लालचंद

(२) जयपुर (राजस्थान)— श्री बाबूभाई (फतेपुर-गुजरात) के पधारने से धार्मिक समाज में अत्यधिक उत्साह रहा। आपके द्वारा हमेशा जिनेन्द्र पूजा-भक्ति तथा प्रवचन; शिक्षण-कक्षा, तत्त्वचर्चा, शंका-समाधान आदि विविध प्रकार के कार्यक्रम चलते थे। समाज ने अपूर्व और असाधारण लाभ लिया। संक्षिप्त समाचार गतांक में दे चुके हैं।

श्री महावीर पार्क में क्षमावाणी पर्व का सम्मेलन सब जैनियों का हुआ, उस समय श्री बाबूभाई का उपदेश, सब मेहमानों को हजारों जैन बंधुओं से मिलने का, एक दूसरे से क्षमा मांगने का व वात्सल्यभाव का दृश्य जो देखते ही बनता था।

श्री बाबूभाई के प्रवचन सारगर्भित हुए, लोगों को अति प्रसन्नता हुई, हरेक मंदिर में नरनारी भर जाते थे, सबको बहुमान आया।

हमेशा प्रश्न पूछनेवाले भी आते रहते थे, शहर के अग्रणियों में जगह-जगह भोजन पार्टियाँ

भी हुई, श्री बाबूभाई आदि तथा मेहमान जिनमंदिर के दर्शनार्थ मौजमाबाद गये, वहाँ अनेक विध तैयारी थी, जिनप्रतिमाओं के दर्शन किये, पूजा-भक्ति-प्रवचन ठाठ से हुए। लोग श्री बाबूभाई की भक्ति देखकर दंग रह गये।

जयपुर में अंतिम दिन मुंशीजी को भी इतना प्रेम आया कि उत्साहित होकर पाँच मिनिट तक अत्यंत वात्सल्यमूर्ति, जैनधर्म के प्रभावक श्री बाबूभाई की बहुत प्रशंसा की।

दिगम्बर जैन समाज की ओर से सम्मान पत्र भी दिया गया। बड़े पंडितजी श्री चैनसुखदासजी ने अपना भाव प्रगट किया, खूब जोर से आभार प्रदर्शित किया।

विदाई-समारोह—

ठाट से हुवा, देखनेलायक दृश्य था। चौक में, रास्ते में लोग खचाखच भर गये, बाबूभाई के साथ आये हुए सब मेहमानों को भी फूलमाला पहनाते रहे, भजन बोले गये, मन भर आया था, स्टेशन पर भी लोग पहुँचे थे, फूलमाला पहनाते रहे, समाज के प्रमुख व्यक्ति सब ही स्टेशन पर सम्मानपूर्वक विदा देने आये थे, ऐसा विदाई समारोह विरलों का ही होता है। इतने सम्मान पर बाबूभाई अपनी लघुता प्रगट कर कहते थे कि मैं तो सोनगढ़ का पोस्टमैन हूँ, प्रत्यक्ष स्वामीजी पास जावें, वहाँ लाभ लेवें, इसतरह श्री बाबूभाई का जयपुर पधारना बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ और जैन शिक्षण कक्षा चलाने की पद्धति से और भी प्रभावना हुई। समाज के लोग चाहते हैं कि बारम्बार जल्दी से जल्दी शिक्षण शिविर चलाये जावें। —महेन्द्रकुमार सेठी

(३) कलकत्ता— सुप्रसिद्ध मनोज्ञ विद्वान वक्ता श्री युगलजी, एम.ए., साहित्यरत्न (कोटा) के यहाँ पधारने से अच्छी प्रभावना हुई, सुबह श्री समयसार कर्ताकर्म अधिकार, शाम को मोक्षमार्गप्रकाशक चलते थे, काफी संख्या में श्रोता आते थे, रुचिपूर्वक व्याख्यान सुनते थे। श्री युगलजी बहुत गहराई में उतरे हुवे हैं, समझाने की शैली अच्छी है, स्वभाव बहुत सरल, प्रशस्त, शांत है, विचारधारा बहुत सुन्दर है, जैन सिद्धांत के मर्मज्ञ हैं, यह सब पूज्य कानजीस्वामी महाराज साहिब के सदुपदेश का ही प्रताप है, जो इसप्रकार के योग्य व्यक्ति प्रगट होने लगे हैं। श्री युगलजी के जितने भी प्रवचन हुए, बड़े ही प्रेरणादायक थे।

— ताराचंद गंगवाल
प्रमुख - श्री कलकत्ता दि० जैन मुमुक्षु मंडल
मोहनलाल पाटनी, मंत्री

(४) दिल्ली— पंडित श्री हिम्मतलालजी (बम्बईवाले) हवाई जहाज द्वारा पधारे तब स्वागत के लिये मंडल के सब सदस्य तथा खंडेलवाल पंचायत के अनेक सज्जन आये थे, वैद्यवाड़ा जिनमंदिर में सवेरे जिनेन्द्र पूजन के बाद दोपहर को सूत्रजी पर प्रवचन तथा रात्रि में भी वहाँ उत्तमक्षमादि धर्म पर प्रवचन होते थे। सुगंधदशमी के दिन सुबह प्रवचन धर्मपुरा मंदिर में हुआ। वहाँ से पंडित हिम्मतभाई तथ्था मंडल के सदस्य २० मंदिरों में धूप क्षेपण करने व दर्शन करने गये, तारीख ९ को सम्मान समारोह हुआ। तारीख १० को लालमंदिरजी में प्रवचन हुआ। तदुपरांत तत्त्वचर्चा आदि कार्यक्रम भी चलता था। —देहली-दि० जैन मुमुक्षु मंडल

(५) बम्बई नगरी—राजकोट निवासी श्री लालचन्दभाई पधारे थे, हर साल माफिक भारी उत्साहपूर्वक जिनेन्द्र पूजा, भक्ति, प्रवचन, व्रत-विधान आदि, तथा तत्त्वचर्चा के रोचक कार्यक्रम हुए।

मलाड-(बम्बई) में श्री मुमुक्षु मंडल द्वारा १० दिन धर्मपर्व अच्छी तरह मनाया गया।

(६) खंडवा (मध्यप्रदेश)—श्रीमान धन्नालालजी लश्कर निवासी के पधारने से इस साल असाधारण रुचि से समाज ने पूर्णतया लाभ लिया, शिक्षण कक्षा, प्रवचन, भक्ति और शंका समाधान आदि कार्यक्रम चलाया था। पंडितजी ने सात तत्त्व, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निमित्त नैमित्तिक संबंध, सम्यक् अनेकांत, चार अभाव, पाँच भाव, निश्चय-व्यवहार की निरूपण पद्धति, कारण-कार्य की सुनिश्चित व्यवस्था क्रमबद्धपर्याय, संयोगदृष्टि और स्वभावदृष्टि का स्वरूप आदि विषयों पर अपने प्रवचनों में प्रकाश डाला। पंडितजी अत्यंत धर्मानुरागी, मधुरभाषी, शांत प्रकृति के हैं, आपने निश्चय-व्यवहार को बहुत स्पष्ट समझाया। आपके प्रवचन सुनकर श्रोतगण मंत्रमुग्ध हो जाते थे। हमारा निवेदन है कि ऐसे धार्मिकता से ओतप्रोत उच्च कोटि के विद्वान धर्म पर्व पर भेजने की कृपा करते रहेंगे, ताकि समाज को हमेशा ज्ञान की वृद्धि में बल मिलता रहे। —दयाचंद पुनासा आदि...

(७) दमोह (मध्यप्रदेश)—इंदौर निवासी श्री प्रकाशचंदजी पांड्या तथा श्री फूलचंदजी तारीख ३०-८-६५ को पधारे, स्वागत हुआ। बाद भा० सुदी ५ से कार्यक्रम सुबह जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला; पूजा बाद सूत्रजी के अर्थ, शाम को मोक्षमार्गप्रकाशक चलता था, रात्रि को श्री फूलचन्दजी का भी प्रवचन होता था, हमेशा शंका-समाधान होते थे, सुदी १५ के दिन जिनेन्द्र रथयात्रा का कार्यक्रम था, सारी जैन समाज जुटी थी, आभार दर्शन समारोह हुआ, वदी १ प्रतिष्ठित

नागरिक समूह द्वारा भावभीनी विदा हुई। पंडित गेंदालालजी शास्त्री, सागर पधारे थे, वहाँ से आप खड़ेरी बुलाने से गये थे; वहाँ से शेठजी श्री गुलजारीलालजी आपको बुला लाये थे, चार दिन तक पंडितजी का प्रवचन हुआ, सबको बहुत प्रसन्नता हुई।

—अमृतलाल जैन शास्त्री तथा दि० जैन समाज, दमोह

(८) खतौली (मुजफ्फरनगर)—श्री घासीलालजी (अलीगढ़-टोंक, राज०) पधारे थे, धर्म प्रभावना बहुत हुई, सवेरे एक घंटे तत्त्वचर्चा, दो घंटे तक सूत्रजी, दोपहर में शास्त्रसभा, रात्रि में शास्त्रसभा के बाद तत्त्वचर्चा। दिन में श्री क्षुल्लकजी नेमसागरजी महाराज तथा ब्रह्मचारी ज्ञानसागरजी तथा अन्य समाज के व्यक्ति भाग लेते थे, आपकी सरल रोचक शैली होने से बच्चे भी आपसे लाभ उठाते थे, जैन समाज को धर्म जिज्ञासा और अध्यात्मतत्त्व में विशेष रुचि हुई है। पूज्य कानजीस्वामी तथा दि० जैन महामंडल सोनगढ़ प्रचार विभाग तथा पंडितजी का विशेषरूप में आभार माना गया तथा पंडितजी को अभिनंदन पत्र खतौली दि० जैन समाज द्वारा दिया गया।

—पद्मसेन जैन

(९) विदिशा (मध्यप्रदेश)—ब्रह्मचारी श्री हेमराजजी के पधारने से विदिशा जैन समाज उनकी अत्यंत आभारी है। निर्भीकता से तत्त्व का निरूपण करके सोनगढ़ साहित्य आगमानुकूल ही है और सर्वज्ञ वीतराग कथित सुख का उपाय इसप्रकार ही है, अन्यथा नहीं। यह बात सुंदर ढंग से बताई।

—नंदकिशोर एडवोकेट

(१०) कोटा (राजस्थान)—श्री पंडित प्रकाशचंदजी हितैषी, दिल्लीवाले आमंत्रण से पधारे थे। आपके प्रवचन सवेरे तथा रात्रि को होते थे, तथा दिन में शंका-समाधान आदि चलते थे। श्री जुगलकिशोरजी कलकत्ता (पर्यूषण पर) जाने से उनकी पूर्ति में आपने पधारकर उत्तम लाभ दिया, इसलिये संपूर्ण कोट जैन समाज हार्दिक धन्यवाद देती है।

—लालचंद जैन, बी.ए., मंत्री श्री वीर संघ।

(११) सागर (मध्यप्रदेश)—श्री पंडित गेंदालालजी शास्त्री पधारे, सर्वत्र अच्छी धर्म प्रभावना हुई। आपकी आगमानुकूल स्पष्ट विचारधारा से यहाँ के धर्म जिज्ञासु समाज में आपके प्रति विशेष धर्मानुराग है। पर्यूषण पर्व में आपके १३ दिन के प्रवचन से समस्त जैन समाज को धर्मलाभ हुआ। पंडित जी चारित्रशील तो हैं ही तथा वह जो कहते हैं, उसके ऊपर अडिग श्रद्धा भी रखते हैं तथा भूमिकानुसार पालन भी करते हैं। प्रशमगुण अच्छी तरह आपमें झलकता है। यह सब

पूज्य कानजीस्वामी का प्रसाद है, जो कि सब जगह बाँट रहे हैं। —सिंघई डालचंद जैन सर्राफ

(१२) राधौगढ़ (मध्यप्रदेश)—श्री नेमिचंदजी रखियालवाले पधारे। हमेशा ८ घंटे तक धार्मिक कार्यक्रम चलते थे। आपकी समझाने की शैली उत्तम होने से सबको अपूर्व बात समझ में आ जाती थी, समाज में इस साल अभूतपूर्व उत्साह देखने में आया है। अनादि की निमित्ताधीन दृष्टि बदलकर निजशक्ति के आश्रय से कल्याणमार्ग की प्राप्ति की दृष्टि मिली है। मात्र आत्महित हेतु अधिक ज्ञानार्थ सोनगढ़ आने का अनेक भाईयों ने संकल्प किया है।

वास्तव में हमारे यहाँ ऐसा तत्त्व रहस्य सुनने में नहीं आया था, अनेक लोग शिक्षण कक्षा में बैठकर पढ़ाई करते थे, तत्त्वचर्चा उत्साह से सुनते थे। यह सब आपकी संस्था का पवित्र वात्सल्य तथा स्वामीजी की कृपा का फल है, अत: हमारे यहाँ का समाज आपका आभार मानता है।

विनीत—बाबूलाल रावत मंत्री राधौगढ़ दि० जैन समाज

(१३) गुजना (मध्यप्रदेश)—श्री नेमीचंदभाई राधौगढ़ के पश्चात् यहाँ पधारे थे, दो दिन सारगर्भित प्रवचन हुए, जैन सिद्धान्त प्रवेशिका भी समझाते थे, दसलक्षणधर्म हरसाल माफिक सानंद मनाये गये। —केवलचंद पांड्या

(१४) उदयपुर (मध्यप्रदेश)—श्री देवीलालजी मेहता द्वारा जिनेन्द्र-पूजन, भक्ति, प्रवचन आदि कार्यक्रम दशलक्षणधर्म पर्व में हरसाल माफिक सानंद सम्पन्न हुआ।

—चन्द्रसेन बंडी

(१५) मलकापुर (महाराष्ट्र)—श्री उग्रसेनजी बंडी उदयपुरवाले पधारे, हमेशा पूजा, भक्ति, प्रवचन शिक्षण कक्षादि धार्मिक कार्यक्रम उत्साह से चलता था, दिगम्बर जैन समाज के उपरांत जैनेतर भाईयों ने भी स्वयं आकर लाभ लिया, प्रयोजनभूत तत्त्व के सब विषयों को अनेक प्रकार से सरलता से समझाया, जिसको सभी भाई-बहन अत्यंत उत्साह के साथ नियमपूर्वक श्रवण करते थे। पूज्य कानजीस्वामी का सातिशय निर्मलज्ञान सर्वज्ञ वीतराग कथित सिद्धान्तानुसार ही है। हम पूज्य स्वामीजी का तथा विद्वान रत्न श्री बंडीजी का अत्यंत आभार मानते हैं। सारे शहर में अत्यंत उत्साह रहा। हम प्रार्थना करते हैं कि इसी प्रकार प्रतिवर्ष विद्वानों को भेजने की कृपा करेंगे।

—चुन्नीलाल रामूसा, अध्यक्ष दि० जैन समाज मलकापुर (महाराष्ट्र)

(१६)प्रतापगढ़—ब्रह्मचारी श्री दुलीचंदजी महाराज (इन्दौर) के पधारने से इस साल जैन समाज को बहुत-बहुत आनंद हुआ, पर्यूषणपर्व में तथा बाद में भी शंका समाधान प्रवचनादि

संपूर्ण कार्यक्रम पूर्ण उत्साह से चलता था, आज भी चालू है, समाज वीतराग कथित सिद्धान्त का स्पष्टीकरण सोनगढ़ के संत की कृपा का फल है। —केसरीमल बंडी

(१७) **अहमदाबाद** (गुजरात)—ठि० खाडिया, गोलवाड़ के सामने, यहाँ श्री चिमनलाल ताराचंदजी पधारे थे, हमेशा तीन बार प्रवचन, समय पर पूजा, भक्ति, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, शंका समाधान आदि कार्यक्रम थे, रविवार के दिन काफी संख्या होती थी, धर्म जिज्ञासु जैनेतर समाज भी अच्छी संख्या में लाभ लेती थी।

—चुनीलाल शाह, मंत्री, अहमदाबाद मुमुक्षु मंडल

(१८) घाटकोपर (बम्बई)—श्री चन्दुलाल शिवलाल शाह पधारे थे, हर साल माफिक बड़ी संख्या ने लाभ लिया, पूर्ण उत्साह सहित सब कार्यक्रम रहा, शंका-समाधान के द्वारा विशेष उत्साह रहा। —दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल

(१९) राजकोट (गुजरात)—श्री नेमीचंदजी पाटनी (जयपुर निवासी) इस पर्व में आपके तीन प्रवचन हुये, सभी को भारी आनंद हुआ। अंतिम छह दिन सेठ श्री खेमचंदभाई, सोनगढ़ से पधारे, विशेष आनंद हुआ, आपकी प्रवचन शैली अत्यंत रोचक, विशेष हृदयग्राही है।

—रतीलाल घीया

(२०) मैनपुरी (उत्तरप्रदेश)—पंडित हुकमीचदंजी शास्त्री (अशोकनगर) के तत्त्वोपदेश से नवीन चेतना का संचार हुआ है, तथा उनके प्रवचन से वस्तुस्थिति का यथार्थ दर्शन यहाँ प्रथमबार ही हो सका है, पर्व के अंत में रथयात्रा-धारा विधान और क्षमावाणी का सुंदर आयोजन रहा। —प्रकाशचंद्र, मंत्री-दिगम्बर जैन समाज

(२१) जलगाँव (महाराष्ट्र)—श्री ब्रह्मचारी रमेशचंदजी-प्रचारक टेपरील प्रवचन प्रचार विभाग, आप यहाँ चार दिन ठहरकर चिखली गये, टेपरील द्वारा पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सुनने को मिले। तीर्थयात्रा की फिल्म द्वारा अच्छी प्रभावना हुई, बहुत सुखी हुई। —आनंदीलाल जैन

(२२) चिखली—यहाँ श्री ब्रह्मचारी रमेशचंदजी तारीख २-९-६५ के दिन आये, प्रतिदिन चार घंटे तक कार्यक्रम चलता था। टेपरील प्रवचन, शिखण-वर्ग, भजन भक्ति आदि चलते थे, श्री ब्रह्मचारी धन्यकुमारजी भी यहाँ थे, आसपास के गाँव से लाभ लेनेवाले धर्म जिज्ञासु एकत्र हुए थे। यहाँ से ढासाला, मलकापुर-कारंजा जाने का कार्यक्रम है।

—देवीलाल मोतीलाल शेठ

(२३) खड़ेरी—१०५ श्री क्षुल्लकजी महाराज श्री चिदानंदजी महाराज का चातुर्मास होने से यहाँ आसपास के धर्म जिज्ञासु बहुत आते हैं। हमेशा ८ घंटे तक असाधारण उत्साह से धार्मिक कार्यक्रम चलते जो देखते ही बनते थे, लोगों में चिरस्मरणीय उत्साह देखा, यहाँ दमोह से श्री सेठ हजारीलाल सा० पधारे थे भारी अनुरोध से मुझे दमोह ले गये। वहाँ चार दिन शास्त्रसभा में प्रवचन हुए। —गेंदालाल शास्त्री (बूँदी, राजस्थान)

(२४) एडन—यहाँ पर्युषण पर्व पर राजकोट निवासी विद्वान श्री देवशीभाई हमारे आमंत्रणानुसार पधारे हैं, पवित्र जैनधर्म का प्रोत्साहन मिला है। यहाँ श्री देवशीभाई हमेशा एक घंटा तक जैन शिक्षण कक्षा चलाते थे। नव तत्त्वों के विषय में विस्तृत समझ देते थे, तथा समयसार कर्ताकर्म अधिकार पर प्रवचन होते थे और रात्रि को शंका-समाधान होता था। उसमें जैन-जैनेतर समाज ने भाग लिया था मंडल के भाईयों का उत्साह तथा धार्मिक रुचि दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है, यह सब परम कृपालु स्वामीजी की पवित्र धर्म प्रभावना का उदय है, अन्यथा हमको ऐसा लाभ कहाँ से मिलता ? —एम.सी. तुरखीया, मंत्री-श्री मुमुक्षु मंडल, एडन

(२५) नैरोबी (अफ्रीका)—दशलक्षणी पर्व बहुत उल्लास और आनंद से मनाया गया, हरेक भाई-बहिनों ने असाधारण उत्साह से भाग लिया। सवेरे ७ से ८ जिनेन्द्र भगवान की पूजा, ८ से ९ नियमसारजी पर प्रवचन, दोपहर में मोक्षमार्गप्रकाशक, शाम को प्रतिक्रमण, रात्रि को प्रवचनसार तथा उत्तम क्षमादि दस धर्मों का प्रवचन, बाद ८ से ९ जिनेन्द्रभक्ति, जिसमें प्रत्येक का उछलता हुआ उत्साह जो देखते ही बनता, प्रत्येक कार्यक्रम में अच्छी संख्या में नियमित उपस्थिति थी वातावरण बहुत आनंददायक शांतिमय धर्ममय था, जो सोनगढ़ स्वाध्यायमंदिर तथा जिनमंदिर का स्मरण करा रहा था।

इस प्रकार दशलक्षणी पर्व बहुत आनंद-उल्लास से सम्पन्न हुए। इसीप्रकार मौम्बासा, मोशी से भी समाचार है।

—झवेरचंद पूनमचंद, मंत्री-श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल (नैरोबी)

उज्जैन, अशोकनगर, एत्मादपुर, बडौत, सहारनपुर, बड़नगर, मंदसोर, भोपाल आदि से भी पर्युषण पर्व सानंद संपन्न होने के समाचार आये हैं।

श्री मध्यप्रदेशी दिगम्बर जैन तीर्थ रक्षा समिति

शीशमहल, दानवीर सर हुकमचंद मार्ग, इंदौर

दिनांक २४ सितम्बर ६५

समिति द्वारा जैन समाज के संगठन पर उपाध्यक्ष श्रीमान् राजकुमारसिंहजी का वक्तव्य

जैनदर्शन के तारीख २०-९-६५ के अंक में पृष्ठ ५ पर श्री तेजपालजी काला का एक लेख 'स्फुट विचार' शीर्षक के अंतर्गत 'मध्यप्रदेश का नया संगठन' नाम से छपा है। इसीप्रकार तारीख २६ अगस्त के जैन मित्र के अंक में इसी विषय पर श्री चिमनलालजी बखारिया का एक वक्तव्य छपा है। इन लेखों से श्री मध्यप्रदेशीय तीर्थ रक्षा समिति के कार्य के बारे में सब ओर समाज में बहुत गलतफहमी फैली है। इसी कारण मेरे लिये इन वक्तव्यों तथा श्री मध्यप्रदेशी तीर्थ रक्षा समिति के कार्य के बारे में स्पष्टीकरण करते हुए एक वक्तव्य देना अनिवार्य हो गया है।

मध्यप्रदेशी तीर्थ रक्षा समिति के विधान में एक कलम रखी गई है कि यह समिति तीर्थ रक्षा का काम बम्बई की भारतवर्षीय तीर्थ क्षेत्र कमेटी की प्रान्तीय शाखा के रूप में करेगी। इससे स्पष्ट है कि मध्यप्रदेशी तीर्थ रक्षा समिति तीर्थ रक्षा का काम भारतवर्षीय तीर्थरक्षा कमेटी के अंतर्गत और उसकी सहयोगी संस्था के रूप में ही करेगी। विधान में इसप्रकार का प्रावधान हो जाने के बाद मेरी समझ में नहीं आता कि शंका के लिये क्या गुंजाइश रह जाती है। अब रह जाती है बात कोष की। इस बारे में सभी लोग यह समझ सकते हैं कि इसप्रकार का वृहद् कोष दो जगह तो इकट्ठा नहीं हो सकता है। समाज के महानुभाव जो बड़ी रकम कोष में देने वाले हैं, उनसे यह तो आशा कदापि नहीं की जा सकती कि वे दो जगह बड़ी रकमें दे देंगे। इसी बात को दृष्टि में रखते हुए भारतवर्षीय तीर्थ क्षेत्र कमेटी के सभापति श्रीमान् साहू शांतिप्रसादजी साहब तथा मंत्री श्रीमान् चन्दूलालजी साहब ने इंदौर के अधिवेशन के समय आश्वासन दिया था कि वे ऐसी व्यवस्था करेंगे कि जो महानुभाव मध्यप्रदेशीय तीर्थ रक्षा समिति को बड़ी रकमें अर्थात् रुपये ११००१अथवा २१०१ का अनुदान देंगे उन्हें भारतवर्षीय तीर्थ क्षेत्र कमेटी बम्बई का सम्मानीय अथवा आजन्म सदस्य मान लिया जावेगा। कोष इकट्ठा होने पर मध्यप्रदेशी रक्षा समिति के सदस्यगण अपनी प्रबन्धकारिणी के

द्वारा निर्णय करेंगे कि यह सारा कोष अथवा इसमें से कितना भाग भारतवर्षीय तीर्थ क्षेत्र कमेटी को देना और कितना भाग अपने पास रखना। मैं समझता हूँ कि इस निर्णय के समय मध्यप्रदेशीय तीर्थ रक्षा समिति के सदस्यगण इस बात पर भी विचार करेंगे कि देश के और प्रान्त भारतवर्षीय तीर्थ क्षेत्र कमेटी को कितना द्रव्य एकत्रित करके देते हैं। यदि हमने हमारे यहाँ इसप्रकार का संगठन बनाकर आज समाज में द्रव्य एकत्रित करने के लिये सैकड़ों की तादाद में कार्यकर्ता तैयार कर लिये हैं तो किन्हीं महाशयों को बुरा क्यों लग रहा है ? हमने हमारे अधिवेशन के समय सभी प्रान्तों के समाज के नेताओं को यहाँ आने के लिये आमंत्रित किया था। हमें आशा थी कि वे यहाँ पधारेंगे और यहाँ के कार्य देखकर इसी तरह अपने-अपने प्रान्तों में संगठन बनाकर इस तीर्थ सेवा के महान पुण्य कार्य के लिये अनेकानेक कार्यकर्ता सारे भारत में तैयार करेंगे।

हमें बड़ा दु:ख है कि हमारे मान्य नेताओं ने हमारे इस सुझाव पर ध्यान नहीं दिया। और भी बड़े दु:ख की बात है कि स्वयं भी इसीप्रकार का कार्य करने के बजाय उलटे हमारे कार्य के बारे में इन लेखों द्वारा गलतफहमियाँ फैला रहे हैं और पुण्यकार्य में बाधायें डाल रहे हैं। मैं कहना चाहता हूँ कि इन लेखों से हमारे काम को धक्का लगा है लेकिन मैं भारत की सारी समाज को स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हम अपने कार्य में इन बातों से डरनेवाले नहीं हैं, बल्कि और भी दृढ़ संकल्प होकर अपना कार्य करते हरेंगे और हमें निश्चय है कि हम अपने कार्य में सफल होंगे।

मैं लेख लिखनेवाले महाशयों से जानना चाहूँगा कि श्रीमान् साहू शांतिप्रसादजी साहब अथवा श्रीमान् चन्दूलालजी साहब भारतवर्षीय तीर्थ क्षेत्र कमेटी में वृहद् कोष बिना इसीप्रकार के कार्यकर्ता एकत्रित किये किसप्रकार से इकट्ठा कर लेंगे ? हमने तो हमारे यहाँ का संगठन बनाकर स्पष्ट मार्गदर्शन दे दिया है कि यही तरीका है जिससे इतना बड़ा काम आसानी से हो सकता है। यदि समाज के नेता लोग अब भी इस बात को नहीं समझ सके और इस तरीके को नहीं अपना सकें तो मैं तो यही कहूँगा कि दिगम्बर जैन समाज का भविष्य खतरे में है। मैं तो सारे भारत के दिगम्बर जैन समाज के नेताओं से फिर अपील करता हूँ कि वे सब इसी मार्ग को अपना कर दिगम्बर जैन समाज को संगठित करें और उसे भविष्य के खतरे से बचायें।

एक बात मैं इन महानुभावों के सामने और रखना चाहता हूँ। भारत के अधिकांश दिगम्बर जैन तीर्थ मध्यप्रदेश में हैं। इनका संरक्षण और व्यवस्था यदि भारतवर्षीय तीर्थ क्षेत्र कमेटी करना चाहेगी तो क्या उन्हें हमारे जो कार्यकर्ता हैं, उनकी आवश्यकता नहीं होगी ? यदि वे कोष का

उपयोग जीर्णोद्धार आदि में करना चाहेंगे तो वे सारा कोष बम्बई में ही रखकर यह सब कार्य कर लेंगे क्या ?

अब मैं मध्यप्रदेशी तीर्थ रक्षा समिति के अन्य उद्देश्यों के बारे में कुछ कहना चाहता हूँ। हमने अपने उद्देश्य बहुत विस्तृत रखे हैं। इनमें सबसे बड़ा काम समाज को संगठन करने का है। आज हमारी समाज बहुत ही छिन्न-भिन्न हो रही है। समाज में बीसपंथी, तेरहपंथी, सोनगढ़ मंतव्य का पक्ष और विपक्ष और इसीप्रकार के कई जबरदस्ती के झगड़े पनप रहे हैं। स्थान-स्थान पर कई व्यक्तिगत झगड़ों ने समाज को छिन्न-भिन्न कर रखा है, ऐसी हालत में समाज को संगठित करने की अत्यंत आवश्यकता है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो समाज का भविष्य अंधकारमय हो जावेगा। अभी तीर्थराज पर जो संकट आया था, उसको देखते हमने सोचा कि अब समय आ गया है कि इस संगठन के काम में बिल्कुल विलम्ब नहीं किया जाना चाहिये और इसीलिये हमने इस काम को हाथ में ले लिया है। इस संगठन को करने की नितांत आवश्यकता है और हम इस काम को हमारे प्रांत में करेंगे और अवश्यमेव और बड़ी सफलता के साथ करेंगे, यह हम लोगों का दृढ़ निश्चय है। मैं आशा करता हूँ कि सारे मध्यप्रदेश की दिगम्बर जैन समाज इस शुभकार्य में हमें पूर्णरूपेण सहयोग देगी। मैं सारी समाज से जोरदार शब्दों में अपील करता हूँ, कि हम महत्त्वपूर्ण कार्य को करने में दृढ़ संकल्प हो जावे।

अब रही बात पुरानी भारतवर्षीय स्तर की संस्थाओं की। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद तो केवल परीक्षालय चला रही है। इसकी और सभी गतिविधयाँ तो आजकल प्रायः बन्द सी हैं और मैं इस संस्था का सदस्य नहीं हूँ, इसलिये मैं इसके बार में विशेष कुछ नहीं लिखना चाहता। हमारी दूसरी और सबसे महत्त्वपूर्ण संस्था है भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा। मैंने महासभा के लाडनूं अधिवेशन के अपने अध्यक्षीय भाषण में बड़े ही स्पष्ट शब्दों में समाज की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण किया था और महासभा के सदस्यों से अपील की थी कि वे उन बातों पर ध्यान देकर समाज की स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करें। महासभा के सदस्य के नाते मैंने उसकी प्रबंधकारिणी की मीटिंगों तथा और भी मौकों पर भरसक प्रयत्न किये हैं कि महासभा के सदस्य गंभीर विचार करें और समाज की स्थिति सुधारने का प्रयत्न करें। मुझे बड़े ही दुःख के साथ आज लिखना पड़ रहा है कि महासभा के सदस्यों ने मेरी बात पर जरा सा भी ध्यान नहीं दिया। वे केवल औपचारिक अधिवेशन करने मात्र से और महासभा को आज से कई दशाब्दियों पहले के स्थान पर

बनाये रखने में ही राजी हैं। इतना ही नहीं मैं ज्यादा नहीं कहूँगा लेकिन थोड़े में इतना जरूर कहूँगा कि महासभा के अधिकांश अधिपत्यवाले सदस्य समाज में जो झगड़े आज फैल रहे हैं, उनमें अग्नि में तेल डालने का ही काम कर रहे हैं और इतने में ही वे अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ रहे हैं। मैं महासभा के एक सदस्य के नाते महासभा के सभी सदस्यों से एक बार फिर अपील करना चाहता हूँ कि वे समय की चुनौती को समझें और समाज के सभी झगड़ों को मिटाने का प्रयत्न करके समाज को संगठित करने में योग दें। यदि उन्होंने समय रहते ऐसा नहीं किया तो मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं अपना कर्तव्य समझूँगा कि महासभा को बालाए ताक रखकर कोई नई संस्था उसकी जगह स्थापित करने में अपना सहयोग दूँ जो कि संगठित दिगम्बर जैन समाज की गतिविधियों का संचालन कर सके। इस बात का संकेत मैंने अपने मध्यप्रदेशीय तीर्थ रक्षा समिति के इन्दौर अधिवेशन के स्वागत भाषण में दिया था, जब मैंने कहा था कि समय आ सकता है कि जब इस मध्यप्रदेशी तीर्थ रक्षा समिति को भारतवर्षीय दिगम्बर जैन कान्फ्रेंस का रूप लेना पड़े। मैं महासभा के सभी सदस्यों को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं तथा इन्दौर और प्राय: मध्यप्रदेश के सभी दिगम्बर जैन बन्धु महासभा में ही आस्था रखते हैं और दिल से यही चाहते हैं कि महासभा अपने नाम के अनुरूप सबल और सुदृढ़ बने किंतु यदि महासभा के कर्णधारों ने अपनी नीति नहीं बदली और समय को नहीं पहिचाना तो महासभा सबल तो नहीं बनेगी, वरन वह दिगम्बर जैन समाज का प्रतिनिधित्व खो देगी। मैं जानता हूँ कि दिगम्बर जैन समाज के लिये यह बड़ी दुर्भाग्य पूर्ण बात होगी। मैं श्री तेजपालजी साहब व अन्य सभी महासभा के कर्णधारों से सानुनय अनुरोध करता हूँ कि वे मेरी बातों पर ध्यान दें और मध्यप्रदेशीय तीर्थ रक्षा समिति जो संगठन का कार्य करने जा रहा है, उसमें रोड़े न अटकावें और समाज में गलतफहमियाँ फैलाने का प्रयत्न न करें।

अंत में, मैं मध्यप्रदेशीय तीर्थ रक्षा समिति के सभी कार्यकर्ताओं से जोरदार शब्दों में यही अपील करना चाहता हूँ कि वे ऐसे लेखों से विचलित न हों और अपने काम में जुटे रहें। मैं मध्यप्रदेश के सभी दिगम्बर जैन बन्धुओं से अपील करता हूँ कि वे भी ऐसे लेखों पर ध्यान न दें और मध्यप्रदेशीय तीर्थ रक्षा समिति के कार्यकर्ताओं को अबाधित सहयोग देकर तीर्थ रक्षा के तथा संगठन के कार्य को सफल बनावें।

—जम्बूकुमार सिंह

Raj Kumar Singh
M.A. LL.B. F.R.E.S.F.R.G.S.

INDRA BHAWAN
TUKOGANJ
INDORE 1 (M.P.)

UNDER CERTIFICATE OF POSTING

श्रीमान् सम्पादकजी,
आत्मधर्म,
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

महोदय,

आपके पत्र में संलग्न प्रकाशनार्थ भेजी जा रही है। इस प्रकाशनार्थ सामग्री पर असल पर सब हस्ताक्षरकर्ताओं के हस्ताक्षर किया हुआ है। दस्तावेज हमारे पास मौजूद है, उसकी सत्य प्रतिलिपि आपकी ओर प्रेषित है।

कृपया इसे अवश्य ही प्रकाशित कर अनुग्रहित करें।

भवदीय
Sd. राजकुमार सिंह

प्रकाशनार्थ

यह देखकर अत्यंत दु:ख होता है कि अपने समाज के कतिपय अदूरदर्शी एवं विधन संतोषी व्यक्तियों के उकसाने से किसी एक व्यक्ति के नाम से हेन्डबिल छाप दिया जाता है और उसमें परम पावन जिनवाणी के प्रति असम्मानीय एवं अशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया जाता है। विशेष दु:ख इससे होता है कि कुछ विद्वान एवं त्यागीगण भी वस्तु तत्त्व के गूढ़तम भाव पर नहीं पहुँचते हुए कषायान्वित होकर ऐसी प्रक्रिया को बल देते हैं और अनर्गल बातें समाचार पत्रों में छपवाकर समाज में अशांति एवं कलह पैदा करते हैं।

इसी प्रकार की कुछ घटनायें इन्दौर में कतिपय अनुत्तरदायी पुरुषों के द्वारा होकर उसमें

सोनगढ़ से प्रकाशित महान पूज्य धार्मिक आर्ष ग्रंथों के अपमान करने का प्रयास किया गया व किया जा रहा है।

इस निष्कृष्ट पंचमकाल में साक्षात केवलज्ञानी, अवधिज्ञानी अथवा बहुश्रुत ज्ञानी मुनिराजों के अभाव में सूत्र के अर्थ में मतभेद होना बहुत संभव है और अपने ग्रंथों के वाँचने से ही प्रकट होता है कि यह मतभेद समय-समय पर होता रहा है, किंतु इस मतभेद की आड़ में पूज्य पावन जिनवाणी का तिरस्कार करना अथवा व्यंगात्मक शब्दों में उसका उल्लेख करना महान पापबंध का कारण होकर अधोगति का रास्ता खुला करता है।

इसलिए हम इन्दौर की समस्त गोठों की ओर से घोषित करते हैं कि साधारण मतभेदों को दृष्टिगोचर रखते हुए सोनगढ़ द्वारा प्रकाशित प्राचीन पूज्य दिगम्बर जैन आचार्यों की वाणी और उस पर पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों से समस्त दिगम्बर जैन समाज की महान अवर्णनीय लाभ हुआ है और कतिपय पुरुषों को छोड़कर इन्दौर एवं मालवा प्रान्त के दिगम्बर जैन भाईयों की आपके व्यक्तित्व एवं साहित्य के प्रति पूर्ण श्रद्धा है। जो भी भाई इस साहित्य एवं इस प्रगति की ओर श्रद्धा नहीं रखते हैं, वे अपने विचारों के अनुकूल अपना धर्म साधन करें। इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं हैं, किंतु महान आर्ष ग्रंथों अथवा पूज्य श्री कानजीस्वामी व उनके अनुयायियों के प्रति तिरस्कार अथवा व्यंगात्मक शब्दों के प्रयोग को हम अत्यन्त निन्दनीय मानते हैं। दिनांक २५-९-१९६५

सही महाराजा बहादुर सिंह
फार राजकुमारसिंहजी कासलीवाल
श्री दिगम्बर जैन मानकचंद मगनी राम गोठ इन्दौर

सही विमलचंद अजमेरा
श्री दिगम्बर जैन तोड़ा की गोठ इन्दौर

सही कैलाशचंद चौधरी
श्री दिगम्बर जैन तेरापंथी गोठ इन्दौर

सही डी.सी. जैन, चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट
श्री परवार दिगम्बर जैन चैत्यालय इन्दौर

सही रतनलाल गंगवाल
श्री दिगम्बर जैन मारवाड़ी मंदिर गोठ इन्दौर

सही लखमीचंद मोदी
श्री दिगम्बर जैन लश्करी गोठ मल्हारगंज इन्दौर

सही रतनलालजी मोदी
श्री दिगम्बर जैन लश्करी गोठ गोराकुंड इन्दौर

सही मांगीलाल डोसी
श्री दिगम्बर जैन पंचायत संयोगितागंज छावनी इन्दौर

सही शांतिलाल दोसी
श्री दिगम्बर जैन हूमड़ समाज इन्दौर

सत्य प्रतिलिपी

Rajkumar Singh

सोनगढ़-सुवर्णपुरी समाचार—

परमोपकारी पूज्य स्वामी जी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रवचन में सवेरे श्री परमात्मप्रकाश तथा दोपहर में श्री समयसार कलश टीका सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकार चलता है।

तारीख ५-१०-६५ के दिन धर्म रत्न श्री दीपचंदजी सेठिया (सरदार शहर राज०) सोनगढ़ पधारनेवाले हैं।

समयसार कलश टीका—

प्रथम से ११०० प्रति के ग्राहक हो चुके हैं, शीघ्र ही छपेगी।

नियमसार—

छप रहा है, करीब आधा छप चुका है।

समयसार कलश टीका—

छपने की तैयारी में है।

मुक्ति का मार्ग—

दस हजार प्रति संशोधित सुन्दर ढंग से छप गया है। बाईंडिंग हो रहा है।

देशव्रतोद्योतनम्—

दूसरी आवृत्ति सब बिक गई है।

अनुभवप्रकाश—

श्री दीपचन्दजी कृत छप रहा है।

मोक्षमार्गप्रकाशक—

मूल ग्रंथ आचार्यकल्प श्री पंडित टोडरमलजी की हस्तलिखित प्रति से अति सावधानी पूर्वक आधुनिक हिन्दी में भाषा परिवर्तन करा रहे हैं। इस पुस्तक के साथ पंडितजी की रहस्यपूर्ण चिट्ठी तथा श्री पंडित बनारसीदासजी कृत परमार्थ वचनिका, निमित्त उपादान चिट्ठी भी छपाने का निर्णय हुआ है। पुस्तक ७७०० छपेगी। बड़ा टाइप, बड़ी साइज में मूल्य ४) लागत मात्र होता है। प्रथम से ग्राहक होने पर बहुत सस्ते में ग्रंथ मिलेगा।

छहढाला (सचित्र)—

जो आत्मधर्म के ग्राहकों को भेंटस्वरूप भेजी गई है, वह श्री नवनीत भाई सी. जवेरी बम्बई द्वारा है। जिनको न मिली हो उन्हें तथा नये ग्राहकों को दूसरी बार छप रही पुस्तक में से भेंट स्वरूप दी जावेगी। छहढाला पुस्तक के आर्डर बहुत आ रहे हैं, ग्राहकों से निवेदन है कि शीघ्र ही दूसरी बार छपते ही आत्मधर्म द्वारा सूचना दी जावेगी।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्रजी) तीसरी आवृत्ति

तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा उसकी बहुत समय से जोरों से माँग है, जिसमें सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों का और सम्यग्दर्शन आदि का निरूपण सुगम और स्पष्ट शैली से किया गया है, सम्यक् अनेकांतपूर्वक नयार्थ भी दिये हैं, और जिज्ञासुओं के समझने के लिये विस्तृत प्रश्नोत्तर भी नय प्रमाण द्वारा–सुसंगत शास्त्राधार सहित दिये गये हैं, अच्छी तरह संशोधित और कुछ प्रकरण में प्रयोजनभूत विवेचन बढ़ाया भी है, शास्त्र महत्वपूर्ण होने से तत्त्वप्रेमियों को यह ग्रंथ अवश्य पढ़ने योग्य है, पत्र संख्या ९००, मूल्य लागत से बहुत कम मात्र ५) रखा गया है। पोस्टेज आदि अलग।

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)।

नया प्रकाशन

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कृत

पंचास्तिकाय संग्रह यानी पंचास्तिकाय शास्त्र

इसका अक्षरसः ठीक रूप से सांगोपांग अनुवाद श्री हिम्मतलाल जे. शाह बी.एससी. द्वारा प्रथम बार ही हुआ है, जो प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों को एकत्र करके पाँच साल तक उत्तम परिश्रम द्वारा आचार्यवर श्री अमृतचन्द्र कृत संस्कृत टीका का अक्षरशः अनुवाद तैयार हुआ है, यह ग्रंथ दूसरी बार बड़े टाइप में सर्व प्रकार सुंदर संशोधित व संस्कृत टीका सहित छपा है, टीका के कठिन विषयों पर अच्छा प्रकाश डालनेवाला विस्तृत फुटनोट भी दिया है, बढ़िया कागज, सुंदर छपाई और रेगजीन कपड़े की सुंदर जिल्द सहित सर्व प्रकार से मनोज्ञ और महान ग्रंथ होने पर भी मूल्य ३-५० है। पोस्टेजादि अलग पृष्ठ संख्या ३१५ (कमीशन किसी को नहीं मिलेगा।)

[जैन-जैनेतर समाज में अवश्य प्रचार में लाने योग्य सुगम और उत्तम साहित्य है।]

पता — श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

समयसार शास्त्र	५-०	अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार)	१-५०
प्रवचनसार	प्रेस में	जैन बाल पोथी	०-२५
नियमसार	५-५०	छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०-१५
पंचास्तिकाय	४-५०	छहढाला (नई सुबोध टी.ब.)	०-८७
आत्मप्रसिद्धि	४-०	ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२-५०
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०)	५-०	सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१-८५
स्वयंभू स्तोत्र	०-६०	जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	१-४५
मुक्ति का मार्ग	०-६०	अपूर्व अवसर प्रवचन और	
समयसार प्रवचन भाग १	४-७५	श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा	०-८५
समयसार प्रवचन भाग २	४-७५	भेदविज्ञानसार	२-०
समयसार प्रवचन भाग ३	४-२५	अध्यात्मपाठसंग्रह पक्की जिल्द	५-०
समयसार प्रवचन भाग ४	४-०	'' '' कच्ची जिल्द	२-२५
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]		भक्ति पाठ संग्रह	१-०
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१-०	वैराग्य पाठ संग्रह	१-०
'' ''द्वितीय भाग	२-०	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०-१५
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	०-६०	स्तोत्रत्रयी	०-५०
भाग-२ ०-६० भाग-३	०-६०	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-२५
योगसार-निमित्त उपादान दोहा	०-१२	'आत्मधर्म मासिक' वार्षिक चंदा	३-०
श्री अनुभवप्रकाश	०-३५	'' फाईलें सजिल्द	३-७५
श्री पंचमेरु आदि पूजा संग्रह	१-०	शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०-१२
दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन बृ० पूजा	०-७५	जैनतत्त्व मीमांसा	१-०
देशव्रत उद्योतन प्रवचन	६-०		

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।